15 304
34866

ॐ

नमः सर्वात्मने श्रीजगदीश्वराय

श्रीमद्दयानन्ददिग्विजयार्क

द्वितीय खण्ड

यह सब ग्रन्थ ज़िला फ़र्रुखाबाद के [illegible] ग्रामाधीश और

आर्य्यसमाज [illegible] के संस्थापक व सभासद पंडित

गोपाल शास्त्री शर्म्मा

ने

सकल आर्य्य धर्मनिवासियों के प्रमोद और [illegible]

के

धर्मप्रचारार्थ

बनाया

GG APL.D
२८४-११८५

[illegible]

संवत् १९४५ वि०

सन् १८८८ ईस्वी

रु० ५

मूल्य प्रति पुस्तक [illegible]

[illegible] तुलसीराम [illegible]

गुरु विरजानन्द दण्डी
सन्दर्भ पुस्तकालय
पुपरिग्रहण क्रमांक ... 835
दयानन्द महिला महाविद्यालय, कुरुक्षेत्र

सूचना

विदित हो कि इस दिग्विजयार्क के द्वितीयांश में भी छः ही मयूख (अध्याय) नीचे लिखे नामानुसार यथा नाम तथा गुण हैं और प्रत्येक मयूख में दो२ तीन२ प्रकरण हैं ॥

१	वेदोत्पत्ति वर्णनम्	४	श्रीमद्भाष्य प्रदर्शनम्
२	वेदानां निस्वत्व वर्णनम्	५	सामाजिक चरित्र वर्णनम्
३	वेद संज्ञा विचार वर्णनम्	६	सामाजिक प्रबंन्ध विवर्णनम्

विज्ञापन

समस्त आर्य समाज और यावत् सत्पुरुषों की सेवा में प्रार्थना है कि इस ग्रन्थ के तीनों खंडों के प्रचार करने में हो सके तहां तक पुरुषार्थ करें जिससे मनुष्यों का अनुराग श्रीमान् स्वामीजी महाराज के चरणों में बढ़े सिवाय इसके जिनके पास यह ग्रन्थ पहुंचे वे तुरन्त कृपा करके एक कार्ड के द्वारा पुस्तक प्राप्ति की सूचना ग्रन्थ कार को कर देवें और जिनके यहां जो कुछ ग्रन्थ कार का हिसाब अब तक का हो वह डाक व्यय सहित जोड़ कर प्राप्ति पत्र में लिख दिया करें पश्चात् जिनके यहां हिसाब रुपये से कम का हो वह उतने का टिकट और विशेष हो तो मनी आर्डर द्वारा वा जिस प्रकार हो सके शीघ्र भेजें जिससे इतर उपकारक कामों की सिद्धि हो, द्वितीय बात यह है कि यदि कोई धन रहित धर्मात्मा वा उत्साही विद्वान् इस ग्रन्थ के किसी खंड के देखने दिखाने की अपने शुद्धान्तःकरण से लालायित हो तो वह अपना प्रार्थना पत्र व अपेक्षित पुस्तक का डाक महसूल किसी आर्य समाज के मंत्री की सम्मति से मेरे पास भिजवावे जिससे कि बिना मौल्य वह खंड उसके समीप भेजने में आवे इति ॥

९०(१)
८२२
१५.८.२
गुरुकुल पुस्तकालय कांगड़ी

ओ३म्

तत्सत्यम्

वसुराणाङ्कभूवर्षे श्रावणस्यसितेदले ॥
नवम्यांगुरुवारेच ग्रन्थारम्भः कृतोमया

अथ

श्रीमत् दयानन्द दिग्विजयार्क द्वितीय

ग्रन्थारम्भः

मन्त्र

ओ३म् भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ॥ स्थिरैरङ्गै
स्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥१॥

शन्नो वातः पवतां शन्नस्तपतु सूर्यः ॥ शन्नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो
अभि वर्षतु ॥२॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति ॥ शन्नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥३॥
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

प्रार्थना

सर्वात्मा सच्चिदानन्दो विश्वाद्यो विश्वकृद्विभुः॥
भूयात्तमां सहायो नः सर्वज्ञो न्यायकृच्छुचिः १॥

श्रियं बिभ्रद्वर्णैः सुपदवृतवृत्तैर्विरचयन्
धराध्वान्तध्वंसानबुधविधुबोधं विधुत्यन्
मनुष्यान् गोपाला हनुग पदरव्यादुरितज
स्तदर्कासोदे दिग्विजयकलितार्को विजयताम्

अथ प्रारम्भः

श्रीजगदीश्वर की स्तुति प्रार्थना के पश्चात् विदित हो कि प्रथमाङ्क द्वारा पूर्ण प्रतापी श्रीमान् स्वामीजी महाराज की दिनचर्या और सर्वत्र पुराणी जैनी कुरानी किरानी आदि मतवादियों पर विजयी होना आदि बहुतसा वृत्तान्त संक्षेप रीति से वर्णन हो चुका है अब इस द्वितीयाङ्क द्वारा ग्रन्थ रचना आदि उनके बहुत से अद्भुत चरित्र वर्णन किये जाते हैं निश्चय है कि इस ग्रन्थ को देख सत्पुरुषों को बड़ा ही हर्ष और लाभ होगा जिनका पूर्वार्जित अच्छा होगा उन को बहुत कुछ कर्तव्य भी सूझेगा॥

आर्यगण

अब हम उन सद्ग्रन्थों का नाम संक्षेप व्याख्या सहित लिख सूचि
त करते हैं जिन को श्रीमान् दिग्विजयी ने सनातन रीत्यानुसार मह
त्परिश्रम और व्यय से सर्वोप का सर्थ रचकर मुद्रित कराया था कर
रहे हैं ये सब ग्रन्थ वैदिक यंत्रालय प्रयाग और सब आर्य समाजों
में मिलेंगे ॥

अथ ग्रन्थ सूचना

१ समस्त वेद भाष्य भूमिका ५)

श्रीयुत स्वामीजी महाराज ने वेद भाष्य के आरम्भ से पूर्व यह ग्रन्थ
चारों वेदों की १६ जिल्दों में रचा है मोल्य प्रति जिल्द ।) आना इस
में ऋग् यजु साम अथर्व इन चारों वेदों का नित्यत्व और उनकी
उत्पत्ति और उनमें से सब शास्त्रों का प्रादुर्भाव और बहुत से
विषयों का आशय बहु प्रबल प्रमाणों सहित यथावत् सूचित
किया है सिवाय इसके सृष्टिक्रम की व्यवस्था आदि भी लिखी है
इस का कुछ निमूना आगाड़ी देख मिलेगा — मलिनांतःकरण
वालों के व्यतिरिक्त कौन ऐसा होगा जो उसको देख सुन जी से श्री
मान् के अपूर्व परिश्रम की सराहना न करेगा था उसको वेदों पर
श्रद्धा न उपजेगी ॥

२ ऋग्वेद भाष्य चार वर्ष का ४ जिल्दों में ८)

इस वेद की संहिता के आठ अष्टक और प्रत्येक अष्टक में आठ २ अ
ध्याय हैं उन सब के मंत्रों का अर्थ प्रथम पांच प्रकार से स्फुट कर
के संस्कृत में फिर दो प्रकार भाषा में बालबोध लिखा है

३ यजुर्वेद भाष्य चार वर्ष का ४८ जिल्दों में ६)

इस वेद की संहिता में ४० अध्याय हैं उनके मन्त्रों का अर्थ ऊपर लिखे अनुसार संस्कृत और भाषा में लिखा है यह दोनों ग्रन्थ मास २ थोड़ा २ करके तैयार होकर ग्राहकों के पास पहुंचते हैं और प्रत्येक वेद भाष्य का वार्षिक मौल्य ४) रु० है

---

४ संध्योपासन संस्कृत और भाषा ।)

इस पुस्तक में ब्राह्मण आदि को जो नित्य कर्म अर्थात् दोनों काल संध्योपासन और होम हवन तथैव भोजन काल में बलिवैश्वदेव करना अवश्य कहा है उसका विधान और उनमें के गायत्री आदि मंत्रों का अर्थ लिखा है ॥

---

५ संध्योपासन संस्कृत =)

इसमें ऊपर लिखे सब काम केवल संस्कृत भाषा में लिखे हैं ॥

---

६ सत्यार्थ प्रकाश ३॥)

इस ग्रन्थ में कुल बारह समुल्लास (अध्याय) हैं उनके द्वारा परमेश्वर के गुण, जगत् की उत्पत्ति, प्रलय और जो मनुष्यों को कर्तव्याकर्तव्य सत्यासत्य विचार कहा है वह और मिथ्या मतों का खण्डन आदि बहुत से विषय सविस्तार वर्णन किये हैं

---

७ आर्योद्देश्य रत्न माला ᠆)॥

यह एक छोटी सी पुस्तक है इसमें आर्यों के लिये बहुत से मुख्य २ कामों का विचार करना लिखा है

८ आर्य्याभिविनय ।।)

इसमें दो वेदों के बहुत से ऐसे मंत्र लिखे हैं जिनके द्वारा परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना अर्थ समझ कर करने से मनुष्यों का परम कल्याण होता है

९ संस्कार विधिः १।।=)

जोकि ब्राह्मण आदि मुख्य वर्णों को गर्भाधान से लेकर मरण पर्यंत वेदों में लिखे १६ संस्कारों का अपने २ समय पर अवश्य मेव करना कहा है इस लिये उन सबों का विधान प्रत्येक वेद और उस्के सूत्र के अनुसार इस पुस्तक में सबके उपकारार्थ लिखा है

१० भ्रांति निवारण ·)

पंडित महेशचंद्र न्याय रत्ननाम के एक प्रसिद्ध विद्वान् कलकत्ते के संस्कृत कालिज में बड़े अध्यक्ष हैं उनको श्रीयुत की बनाई हुई वेदों की भूमिका और भाष्य पर आधुनिक विद्या के अनुसार भ्रम उत्पन्न हुआ था उसका निवारण इस पुस्तक द्वारा श्रीजी महाराज ने किया है

११ सत्यासत्य विवेक उर्दू =)

इसमें मेला चांदापुर ज़िला शाहजहांपूर की व्यवस्था (जिसका कुछ आशय प्रथमांक के छठे मयूख में हम प्रकाशित कर चुके हैं) विस्तार पूर्वक लिखी है

१२ सत्यधर्म विचार हिन्दी ≡)

ऊपर लिखे अनुसार इस को भी जानो

१३ गौतम अहिल्या की सत्य कथा —)

इसमें ठीक २ वृत्तान्त गौतम अहिल्या और इन्द्र वृत्रासुर का लिखा है जिन की मिथ्या कथा पुराणों में ऐसी लिखी हैं कि जिससे आर्यों को लज्जित होना पड़ता है

१४ शास्त्रार्थ काशी संस्कृत व भाषा ≡)

यह वह पुस्तक है जिसका कुछ विस्तार प्रथमांक के तीसरे ३ मयूख में लिख चुके हैं

१५ शास्त्रार्थ काशी भाषा व उर्दू ≡)

इसको ऊपर लिखे अनुसार जानो अंतर यह है कि इसमें संस्कृत को छोड़ उर्दू लिखी है

१६ भ्रमोच्छेदन —)

राजा शिवप्रसाद । सि । सितारे हिन्द ने भ्रम जाल में पड़कर काशी के विद्वानों की कुछ कुमक से जब प्रथम निवेदन नाम की पुस्तक बना कर छपवाई और उसमें बहुत कुछ गलाप विसलाप लिख श्रीस्वामी विशुद्धानन्दजी के हस्ताक्षर कराय समस्त वेद भाष्य के ग्राहकों के पास भेज श्रीयुत से उत्तर चाहा तब श्री जी महाराज ने उसका इस पुस्तक के द्वारा यथावत् उत्तर लि·

वा और उनके लिये जैसा कि उचित था वैसा बहु कृपा पूर्वक उपदेश भी किया है। परन्तु शोक कि विषयासक्त राजा साहब को न उत्तर सूझा न शांति हुई हालां कि उनने इस पुस्तक को २२ बार पढ़ा तथापि स्मृति बिभ्रम ही रहा सो यह बुद्धि नाशका भी यह सर्व नाशका परम हेतु है अत एव घर २ फिरना पड़ा, वृथा धनव्यय और अपकीर्ति भी हुई, रात्रि को अच्छे प्रकार नींद भी नहीं आती होगी· न वह सुन्दर कांपनी बाग़ की बहार बहार दिखाती होगी जो सदैव उनके सन्मुख खड़ी रहती है ॥ सत्य तो यह है कि "किं करोमि क्व गच्छामि" इस अष्टाक्षरी मंत्र का अहर्निशि जाप जनाब करते होंगे आर्यगण अभी तो कहा है " अविवेकः परमा पदां पदम् "

१७ वर्णोच्चारण शिक्षा =)

संस्कृत पढ़ने की आधुनिक प्रणाली श्रीयुत ने बहुत दुःखप्रद देख कर उसकी सुधार के अर्थ यह प्रथम सुगम पुस्तक रची है

(१) १८ संस्कृत वाक्य प्रबोधः ।=)

वैसी ही यह दूसरी पुस्तक है भाषा पढ़े लोग भी इसके द्वारा शीघ्र संस्कृत में अभ्यास कर लेने सकते है

नोट (१) इस पुस्तक पर राजा साहब के सहचर बाबूराम कृष्णजी ने कुछ सशंकित हो लेख किया है उसकी प्रति कृपया कारक हुत से सम्पादकों के पास भेज कृतकृत्य भी हुए हैं कई सम्पादकों ने उनको पुस्तक प्राप्ति

१९ व्यवहार भानुः ।)

उसी प्रकार की यह तीसरी पुस्तक परम उपयोगी है

२० गोकरुणा निधिः ~)॥

इन दिनों इस देश में गाय बैल आदि पशु और बहुत से पक्षियों की हिंसा होने से भरत खंड वासियों की परम हानि देख करुणा सागर ने यह करुणा निधि रची है इसको सब राजे महाराजे और हमारी गवर्नमेन्ट अवश्य यत्न पूर्ण बनावें जिस से राजा और प्रजा दोनों कल्याण पावें

लिख संतुष्ट कर दिया है उनमें से एक लेख की नक़ल आगे लिखते हैं

नक़ल

हमारे पास अबोध निवारण नामक एक छोटी सी पुस्तक बनारस से आई है इसमें दयानन्द के खण्डन का पुराना राग रसरा बहुत कुछ गाया है पर वही निरी पंडिताई के ढंग पर दयानन्द के आशय पर कुछ भी दृष्टि नहीं है इन दिनों के शुष्क वैयाकरणियों की लड़ाई के ढंग पर उनके लेख में अशुद्धियां निकाल २ कर लिख दी गई हैं यद्यपि हम दयानन्द के किसी तरह पक्षपाती नहीं हैं — पर निरे संस्कृतज्ञ पंडितों की भी सराहना नहीं कर सकते दयानन्द चाहो बहुत बुरे हों पर देश के फ़ायदे और शोधन की ओर तो बहुत प्रवणचित्त हैं पंडितों की मोटी तोंद किमह की सिवाय आंखों में धूर झोंक प्रजा को लूटने के, और फिर इस पुस्तक के अग्रसर तो चतुर्भुज हैं जिनके अगुआ भये भिखारी तिनकी बाट मुसैयां मारी ॥

प्रयागस्थ सम्पादक हिन्दी प्रदीप ॥

३१ भ्रमोच्छेदन =)

यह पुस्तक श्री स्वामीजी महाराज के एक विज्ञ विद्यार्थी ने राजा साहब के द्वितीय निवेदन नाम की पुस्तक के उत्तर में उनके संतोषार्थ लिखी है बहुत ही अच्छी है

नीचे लिखी ११ पुस्तकें अष्टाध्यायी के एक २ विषय पर भाषा में व्यवस्था सहित श्रीयुत ने लिखी हैं जिनके साथ मोल्य लिखा है वे छप चुकीं रहीं वे भी शीघ्र छपेंगी इनके पढ़ने से विद्यार्थी लोग ऐसे अच्छे वैय्याकरणी तैयार हो जावेंगे कि जिनको देख पोप लोग दुम दबावेंगे ॥

१ संधिविषयः ॥) २ नामिक ॥) ३ तद्धितः ४ सामासिकः ॥)
५ अव्ययार्थः ६ आख्यातिकः ७ कारकीयः ।=) ८ सौवरः
९ पारिभाषिकः १० उणादिगणः ११ गणपाठः यहांतक कुल ३२ हुईं

३२

(अष्टाध्यायी) यह पुस्तक अलग भी संस्कृत वृत्ति सहित छपेगी जब विद्यार्थी लोग ऊपर लिखी पुस्तकों को पढ़ लेवेंगे तब उनको इस उपकारी पुस्तक की बहुत आवश्यकता होगी

३३

(निघंटु) अर्थात् यास्क मुनि कृत वैदिक कोशः ॥ ऊपर लिखी हुई सब पुस्तकों के पढ़े हुए विद्यार्थियों को यह पुस्तक हाथ आते ही वेद मंत्रों का अर्थ करना अति सुगम हो जायगा परन्तु उच्च पद अभिलाषियों को इतर शास्त्र दर्शी अवश्य होना होगा ॥
निश्चय है कि इन शास्त्रों की भी ऐसी ही सुगम पुस्तकें श्रीयुत शीघ्र बनावेंगे

प्रियसुहृद्गण

ये ऊपर लिखे सब ग्रंथ अति सरल और सुगम होकर भी बड़े अद्भुत और विचित्र हैं विशेष कर वेद भाष्य भूमिका में तो व जिन्स वे गुण आनो जो कभी महाराज युधिष्ठिर की मय रचित सभाके सुने हों अर्थात् उसको देख सुन श्री जी महाराज के अनुरागी जन तो निःशंक हो अनुपम सुख लहते हैं परन्तु विरोधियों की यह कैफ़ियत होजाती है कि वे उसको देखते ही निश्चय होने के पलटे अधिक भ्रमजाल और महाविकट विस्मयावर्त में पड़कर बेडब पुकार करते हैं अर्थात् कहते हैं कि भाई भाष्य भूमिका के देखने वालो खबरदार हूजियो हम उस्को हाथ में थामते हीअथाह नरककुंड में गिरे तुम तो भी अपनी बुद्धि को काम में लाना अथवा उन पंडितों की सम्मति लेना जिनको हम अपनी तिमिरनाशक तृतीय खण्ड आदि कई पुस्तकों के द्वारा अब तक बहुत कुछ धूल उड़ा चुके हैं-(२) सारांश यह कि भूमिका बड़ी ही चमत्कारी वस्तु है इस लिये अब हम उसका कुछ आशय आगे प्रकाशित करते हैं। विशेष कर उतना प्रकाशित होगा जितना कि वेदों के विषय में आर्यों को अच्छी तरह जान लेना चाहिये क्योंकि बहुत से विरोधी लोग उन विषयों पर शंका कर बैठते हैं

(२) यहां तक जो मज़मून ऊपर से आया है वह राजा साहब की मथ्य गनिवेदन नामी किताब को पढ़ कर समझ लेना चाहिये नहीं तो जैसा कि चाहिये समझ में नहीं आवेगा

विदित होकि श्रीमान् स्वामीजी महाराज ने प्रत्येक विषय प्रथम संस्कृत में फिर उसी को भाषा में लिखा है परंतु हम केवल भाषार्थ यहां लिखते हैं अंत में संस्कृत सहित भी कुछ लिखदिखावेंगे ॥

इति ग्रन्थसूचना

अथ वेदोत्पत्तिविषयः

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥१॥ यजुः० अ० ३१ मं० ७।

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्। सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम्। स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥२॥ अथर्व० कां० १० प्रपा० २३ अनु० ४ मं० २०

एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इत्यादि। श० कां० १४ अ० ५ ॥ अस्याभिप्रायः।

भाषार्थ

प्रथम ईश्वर को नमस्कार और प्रार्थना करके पश्चात् वेदों की उत्पत्ति का विषय लिखा जाता है कि वेद किसने उत्पन्न किये हैं (तस्माद्यज्ञात्स०) सत् जिसका कभी नाश नहीं होता चित् जो सदा ज्ञानस्वरूप है जिसको अज्ञान का लेश भी कभी नहीं होता आनंद जो सदा सुखस्वरूप और सबको सुख देने वाला है इत्यादि लक्षणों से युक्त पुरुष जो सब जगह में परिपूर्ण हो रहा है जो सब मनुष्यों को उपासना के योग्य इष्टदेव और सब सामर्थ्य से युक्त है उसी परब्रह्म से (ऋचः) ऋग्वेद (यजुः) यजुर्वेद (सामानि) सामवेद और (छन्दांसि) इस शब्द से अथर्व भी ये चारों वेद उत्पन्न हुए हैं इस लिये सब मनुष्यों को उचित है कि वेदों को ग्रहण करें और वेदोक्त रीति से ही

चलें (यज्ञिरे) और (अजायत) इन दोनों क्रियाओं के अधिक होने से वेद अनेक विद्याओं से युक्त हैं ऐसा जाना जाता है वैसेही (तस्मात्) इन दोनों पदों के अधिक होने से यह निश्चय जानना चाहिये कि ईश्वर सेही वेद उत्पन्न हुए हैं किसी मनुष्य से नहीं वेदों में सब मंत्र गायत्र्यादि छन्दों से युक्त ही हैं फिर (छन्दांसि) इस पदके कहने से चौथा जो अथर्व वेद है उसकी उत्पत्ति का प्रकाश होता है शत पथ आदि ब्राह्मण और वेद मंत्रों के प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि यज्ञ शब्द से विष्णु का और विष्णुशब्द से सर्व व्यापक जो परमेश्वर है उसी का ग्रहण होता है क्योंकि सब जगत् की उत्पत्ति करनी परमेश्वर में ही घटती है अन्यत्र नहीं ॥२॥ (यस्मादृचो अपा०) जो सर्वशक्तिमान् परमेश्वर है उसी से (ऋचः) ऋग्वेद (यजुः) यजुर्वेद (सामानि) सामवेद (आंगिरसः) अथर्ववेद ये चारों उत्पन्न हुए हैं इसी प्रकार रूपकालंकार से वेदों की उत्पत्ति का प्रकाश ईश्वर कर्त्ता है कि अथर्ववेद मेरे मुख के समतुल्य सामवेद लोमों के समान यजुर्वेद हृदय के समान और ऋग्वेद प्राण की नाई है (ब्रूहिकतमः स्विदेवसः) अर्थ चारोवेद जिस्से उत्पन्न हुए हैं सो कौनसा देव है उसको तुम मुझ से कहो इस प्रश्न का यह उत्तर है कि (स्कंभंतं०) जो सब जगत् का धारण करता परमेश्वर है उसका नाम स्कंभ है उसी को तुम वेदों का कर्त्ता जानो और यह भी जानो कि उसको छोड़ के मनुष्यों को उपासना करने के योग्य दूसरा कोई इष्ट देव नहीं है क्योंकि ऐसा अभागी कौन मनुष्य है जो वेदों के कर्त्ता सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को छोड़ के दूसरे को परमेश्वर मान के उपासना

करे ॥२॥ (एवं वा अरेस्य०) याज्ञवल्क्य महा विद्वान् जो महर्षि हुए हैं वह अपनी पंडिता मैत्रेयी स्त्री को उपदेश करते हैं कि हे मैत्रेयि जो आकाशादि से भी बड़ा सर्व व्यापक परमेश्वर है उस सेही ऋक् यजुः साम और अथर्व ये चारो वेद उत्पन्न हुए हैं जैसे मनुष्य के शरीर से श्वासा बाहर को आके फिर भीतर को जाती है इसी प्रकार सृष्टि के आदि में ईश्वर वेदों को उत्पन्न करके संसार में प्रकाश करता है और प्रलय में संसार में वेद नहीं रहते परंतु उसके ज्ञानके भीतर वे सदा बने रहते हैं बीजांकुर वत् जैसे बीज में अंकुर प्रथमही रहता है वही वृक्ष रूप होके फिर भी बीजके भीतर रहता है इसी प्रकार से वेद भी ईश्वर के ज्ञान में सब दिन बने रहते हैं उनका नाश कभी नहीं होता क्योंकि वह ईश्वर की विद्या है इस्से इनको नित्य ही जानना ॥

इस विषय में कितने ही पुरुष ऐसा प्रश्न करते हैं कि ईश्वर निराकार है उस्से शब्दरूप वेद कैसे उत्पन्न हो सक्ते हैं इसका यह उत्तर है कि परमेश्वर सर्व शक्तिमान् है उसमें ऐसी शंका करनी सर्वथा व्यर्थ है क्योंकि मुख और प्राणादि साधनों के विना भी परमेश्वर में मुख और प्राणादि के काम करने का अनंत सामर्थ्य है कि मुख के बिना मुख का काम और प्राण के बिना प्राणादि का काम वह अपने सामर्थ्य से यथावत् कर सक्ता है यह दोष तो हम जीव लोगों में आ सक्ता है कि मुखादि के बिना मुखादि का कार्य नहीं कर सक्ते हैं क्योंकि हम लोग अल्प सामर्थ्य वाले हैं और इसमें यह दृष्टान्त भी है कि मन में मुखादि अवयव नहीं है तथापि जैसे उसके भीतर प्रश्नोत्तर आदिशब्दों का उच्चारण मानसव्यापार में होता है वैसेही परमेश्वर में भी

जानना चाहिये और जो संपूर्ण सामर्थ्य वाला है सो किसी कार्य के करने में किसी का सहाय ग्रहण नहीं करता क्योंकि वह अपने सामर्थ्य से ही सब कार्यों को कर सक्ता है जैसे हम लोग बिना सहाय के कोई काम नहीं कर सक्ते वैसा ईश्वर नहीं है जैसे देखो कि जब जगत् उत्पन्न नहीं हुआ था उस समय निराकार ईश्वर ने संपूर्ण जगत् को बनाया तब वेदों के रचने में क्या शंका रही जैसे वेदों में अत्यंत सूक्ष्म विद्या का रचन ईश्वर ने किया है वैसे ही जगत् में भी नेत्र आदि पदार्थों का अत्यंत आश्चर्य रूप रचन किया है तो क्या वेदों की रचना निराकार ईश्वर नहीं कर सक्ता॥

प्रश्न जगत् के रचने में तो ईश्वर के बिना किसी जीव का सामर्थ्य नहीं है परंतु जैसे व्याकरणादि शास्त्र रचने में मनुष्यों का सामर्थ्य होता है वैसे वेदों के रचने में भी जीव का सामर्थ्य हो सक्ता है उत्तर नहीं किन्तु जब ईश्वर ने प्रथम वेद रचे हैं उनको पढ़ने के पश्चात् ग्रन्थ रचने का सामर्थ्य किसी मनुष्य को हो सक्ता है उसके पढ़ने और ज्ञान से बिना कोई भी मनुष्य विद्वान् नहीं हो सक्ता जैसे इस समय में किसी शास्त्र को पढ़ के किसी का उपदेश सुन के और मनुष्यों के परस्पर व्यवहारों को देख के ही मनुष्यों को ज्ञान होता है अन्यथा कभी नहीं होता जैसे किसी मनुष्य के बालक को जन्म से एकांत में रख के उसको अन्न और जल युक्ति से देवै उसके साथ भाषणादि व्यवहार लेश मात्र भी कोई मनुष्य न करै - जब तक उसका मरण न होय तब तक उसको इसी प्रकार से रक्खै तो मनुष्य पने का भी ज्ञान नहीं हो सक्ता तथा जैसे बड़े बन में मनुष्य को बिना उपदेश के यथार्थ ज्ञान नहीं होता किन्तु पशुओं की नाईं उनकी

प्रवृत्ति देखने में आती है वैसेही वेदों के उपदेश के बिना भी सब मनुष्यों की प्रवृत्ति हो जाती फिर ग्रन्थ रचने के सामर्थ्य की तो कथा क्या ही कहनी है इस्से वेदों को ईश्वर के रचित मान ने से ही कल्याण है अन्यथा नहीं ॥

प्र० ईश्वर ने मनुष्यों को स्वाभाविक ज्ञान दिया है सो सब ग्रन्थों से उत्तम है क्योंकि उसके बिना वेदों के शब्द अर्थ और संबन्ध का ज्ञान कभी नहीं हो सक्ता और जब उस ज्ञान की क्रम से वृद्धि होगी तब मनुष्य लोग विद्या पुस्तकों को भी रच लेवेंगे पुनः वेदों की उत्पत्ति ईश्वर से क्यों माननी उ० जो प्रथम दृष्टांत बालक का एकांत में रखने का और दूसरा बन वासियों का भी कहा था क्या उनको स्वाभाविक ज्ञान ईश्वर ने नहीं दिया है वे स्वाभाविक ज्ञान से विद्वान् क्यों नहीं होते इससे यह बात निश्चित है कि ईश्वर का किया उपदेश जो वेद है उसके बिना किसी मनुष्य को यथार्थ ज्ञान नहीं होसक्ता जैसे हम लोग वेदों के पढ़ने विद्वानों की शिक्षा और उनके किये ग्रन्थों को पढ़े बिना पंडित नहीं होते वैसेही सृष्टि की आदि में भी परमात्मा जो वेदों का उपदेश नहीं कर्त्ता तो आज पर्यंत किसी मनुष्य को धर्मादि पदार्थों की यथार्थ विद्या नहीं होती इस्से क्या जाना जाता है कि विद्वानों की शिक्षा और वेद पढ़ने के विना केवल स्वाभाविक ज्ञान से किसी मनुष्य का निर्वाह नहीं हो सक्ता जैसे हम लोग अन्य विद्वानों से वेदादि शास्त्रों का अनेक प्रकार के विज्ञान को ग्रहण करके ही पीछे ग्रन्थों को भी रच सक्ते हैं वैसेही ईश्वर के ज्ञान की भी अपेक्षा सब मनुष्यों को अवश्य है क्योंकि सृष्टि के आरंभ में पढ़ने की कुछ भी व्यवस्था नहीं थी तथा विद्या का कोई ग्र-

न्थ भी नहीं था उस समय ईश्वर के किये वेदोपदेश के बिना विद्या के नहीं होने से कोई मनुष्य ग्रंथ की रचना कैसे कर सक्ता क्योंकि सब मनुष्यों को सहाय कारी ज्ञान में स्वतंत्रता नहीं है और स्वाभाविक ज्ञान मात्र से विद्या की प्राप्ति किसी को नहीं होसक्ती इसी लिये ईश्वर ने सब मनुष्यों के हित के लिये वेदों की उत्पत्ति की है और जो यह कहा था कि अपना ज्ञान सब वेदादि ग्रंथों से श्रेष्ठ है सो भी अन्यथा है क्योंकि वह स्वाभाविक जो ज्ञान है सो साधनकोटि में है जैसे मन के संयोग के बिना आंख से कुछ भी नहीं देख पड़ता न-था आत्मा के संयोग के बिना मन से भी कुछ नहीं होता वैसे ही जो स्वाभाविक ज्ञान है सो वेद और विद्वानों की शिक्षा के ग्रहण करने में साधन मात्र ही है तथा पशुओं के समान व्यवहार का भी साधन है परंतु वह स्वाभाविक ज्ञान धर्म अर्थ काम और मोक्ष विद्या का साधन स्वतंत्रता से कभी नहीं हो सक्ता ॥

प्र० वेदों के उत्पन्न करने में ईश्वर का क्या प्रयोजन था ॥

उ० मैं तुम से पूछता हूं कि वेदों के उत्पन्न नहीं करने में उसका क्या प्रयोजन था जो तुम यह कहो कि इसका उत्तर हम नहीं जान सक्ते तो ठीक है क्योंकि वेद तो ईश्वर की नित्य विद्या है उसकी उत्पत्ति वा अनुत्पत्ति होही नहीं सक्ती परंतु हम जीव लोगों के लिये ईश्वर ने जो वेदों का प्रकाश किया है सो उसकी हमपर परम कृपा है जो वेदोत्पत्ति का प्रयोजन है सो आप लोग सुनें प्र० ईश्वर में अनंत विद्या हैं वा नहीं उ० हैं

प्र० सो उसकी विद्या किस प्रयोजन के लिये हैं उ० अपने ही लिये जिस से सब पदार्थों की रचना और जानना होता है ॥ नहीं

पदी वाद्योय

प्र० अच्छा तो मैं आप से पूछता हूं कि ईश्वर परोपकार को करता है वा नहीं उ० ईश्वर परोपकारी है पर इस्से क्या आया।
प्र० इस्से यह बात आती है कि विद्या जो है सो स्वार्थ और परार्थ के लिये होती है क्योंकि विद्या का यही गुण है कि स्वार्थ और परार्थ इन दोनों को सिद्ध करना जो परमेश्वर अपनी विद्या को हम लोगों के लिये उपदेश न करै तो विद्या से जो परोपकार करना गुण है सो उस का नहीं रहै इस्से परमेश्वर ने अपनी वेद विद्या को हम लोगों के लिये उपदेश करके सफलता सिद्ध करी है क्योंकि परमेश्वर हम लोगों का माता पिता के समान है हम सब लोग जो उसकी प्रजा हैं उन पर नित्य कृपा दृष्टि रखता है जैसे अपने सन्तानों के ऊपर पिता और माता सदैव करुणा को धारण करते हैं कि सब प्रकार से हमारे पुत्र सुख पावें वैसेही ईश्वर भी सब मनुष्यादि सृष्टि पर कृपा दृष्टि सदैव रखता है इस्सेही वेदों का उपदेश हम लोगों के लिये किया है। जो परमेश्वर अपनी वेद विद्या का उपदेश मनुष्यों के लिये न करता तो धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि किसी को यथावत् प्राप्त न होती उसके बिना परम आनन्द भी किसी को नहीं होता जैसे परम कृपालु ईश्वर ने प्रजा के सुख के लिये कंदमूल फल और घास आदि छोटे भी पदार्थ रचे हैं सोही ईश्वर सब सुखों के प्रकाश करने वाली सब सत्य विद्याओं से युक्त वेद विद्या का उपदेश भी प्रजा के सुख के लिये क्यों न करता क्योंकि जितने ब्रह्माण्ड में उत्तम पदार्थ हैं उनकी प्राप्ति से जितना सुख होता है सो सुख विद्या प्राप्ति होने के सुख के हजार वें अंश के भी समतुल्य नहीं हो सक्ता ऐसे सर्वोत्तम विद्या पदार्थ जो वेद है उसका उपदेश परमेश्वर क्यों

पढ़ने को धु०

न करता इस्से निश्चय करके यह जानना कि वेद ईश्वर के ही बनाये हैं ॥

प्र० वेदों के रचने और वेद पुस्तक लिखने के लिये ईश्वर ने लेख-नी स्याही और दवात आदि साधन कहां से लिये थे क्योंकि उस सम-य में कागज़ आदि पदार्थ तो बने ही न थे ॥

उ० वाह वाह वाह आपने बड़ी शंका करी आपकी बुद्धि की क्या स्तुति करैं अच्छा आपसे मैं पूछता हूं कि हाथ पग आदि अंगो के बि-ना तथा काष्ठ लोह आदि सामग्री साधनों बिना ईश्वर ने जगत को क्यों कर रचा है जैसे हाथ आदि अवयवों के बिना उसने सब जगत को रचा है वैसेही वेदों को भी सब साधनों के बिना रचा है क्योंकि ईश्वर सर्व शक्तिमान् है इस्से ऐसी शंका उस में आपको करना यो-ग्य नहीं परंतु इसके उत्तर में इस बात को जानो कि वेदों को पु-स्तकों में लिखके सृष्टि की आदि में ईश्वर ने प्रकाशित नहीं किये थे प्र० तो किस प्रकार से किये थे उ० ज्ञान के बीच में प्र० किन के ज्ञान में उ० अग्नि वायु आदित्य और अंगिरा के प्र० वे तो जड़ पदार्थ हैं उ० ऐसा मत कहो वे सृष्टि की आदि में मनुष्य देह धारी हुए थे क्योंकि जड़ में ज्ञान के कार्य का असंभव है और ज-हां २ असंभव होता है वहां २ लक्षणा होती है जैसे किसी सत्य वादी विद्वान् पुरुष ने किसी से कहा कि खेतों में मचान पुकार-ते हैं इस वाक्य में लक्षणा से यह अर्थ होता है कि मचान के ऊ-पर मनुष्य पुकार रहे हैं इसी प्रकार से यहां भी जानना कि विद्या के प्रकाश होने का संभव मनुष्यों में ही हो सक्ता है अन्यत्र नहीं इसमें (तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्य-

जुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः (श्रा॰ क॰ ११ अ॰ ५) इत्यादि शतपथ ब्रा॰
ह्मण का प्रमाण लिखा है उन चार मनुष्यों के (ज्ञान के) बी॰
च में वेदों का प्रकाश करके उनसे ब्रह्मादि के बीच में वेदों का प्रका॰
श कराया था प्र॰ सत्य बात है कि ईश्वर ने उनको ज्ञान दिया
होगा और उनने अपने ज्ञान से वेदों का रचन किया होगा उ॰
ऐसा तुमको कहना उचित नहीं क्योंकि तुम भी जानते हो कि
ईश्वर ने उनको ज्ञान किस प्रकार का दिया था उ॰ उनको वेद
रूप ज्ञान दिया था प्र॰ अच्छा तो मैं आपसे पूछता हूं कि वह ज्ञान
ईश्वर का है वा उनका उ॰ वह ज्ञान ईश्वर का ही है प्र॰ फिर
आप से मैं पूछता हूं कि वेद ईश्वर के बनाये हैं वा उनके जो ईश्वर का
ज्ञान है उसी ने वेदों को बनाया प्र॰ फिर उन्हीं ने वेद रचे हैं यह
शंका आपने क्यों की थी उ॰ निश्चय करने और कराने के लि॰
ये ॥

प्र॰ ईश्वर न्यायकारी है वा पक्षपाती उ॰ न्यायकारी
प्र॰ जब परमेश्वर न्यायकारी है तो सब के हृदयों में वेदों का प्रका॰
श क्यों नहीं किया क्योंकि चारों के हृदयों में प्रकाश करने से ई॰
श्वर में पक्षपात आता है उ॰ इससे ईश्वर में पक्षपात का लेश
कदापि नहीं आता किन्तु उस न्यायकारी परमात्मा का साक्षात्
न्याय ही प्रकाशित होता है क्योंकि न्याय उसको कहते हैं कि जो
जैसा कर्म करै उसको वैसा ही फल दिया जाय अब जानना चाहि॰
ये कि उन्हीं चार पुरुषों का ऐसा पूर्व पुण्य था कि उनके हृदय में
वेदों का प्रकाश किया गया प्र॰ वे चार पुरुष तो सृष्टि की आदि
में उत्पन्न हुए थे उनका पूर्व पुण्य कहां से आया उ॰ जीव जो

वों के कर्म, और स्थूल कार्य्य जगत्, ये तीनों अनादि हैं जीव, और कारण जगत, स्वरूप से अनादि हैं कर्म और स्थूल कार्यजगत प्रवाह से अनादि हैं ॥

प्र० क्या गायत्र्यादि छन्दों का भी रचन ईश्वर नेही किया है उ० यह शंका आपको कहां से हुई प्र० मैं तुमसे पूछता हूं क्या गायत्र्यादि छन्दों के रचने का ज्ञान ईश्वर को नहीं है

उ० ईश्वर को सब ज्ञान है अच्छा तो ईश्वर के समस्त विद्यायुक्त होने से आपकी यह शंकाभी निर्मूल है प्र० चार मुख के ब्रह्माजी ने वेदों को रचा ऐसे इतिहास को हमलोग सुनते हैं उ० ऐसा मत कहो क्योंकि इतिहास को शब्द प्रमाण के भीतर गिना है आप्तोपदेशः शब्दः न्याय शास्त्रे अ० १ सू० ७ इति गौतमाचार्यणोक्तम् । अर्थात् सत्य वादी विद्वानों का जो उपदेश है उसको शब्द प्रमाण में गिनते हैं ऐसा न्याय दर्शन में गौतमाचार्य ने लिखा है तथा शब्द प्रमाण से जो युक्त है वही इतिहास मानने के योग्य है अन्य नहीं इस सूत्र के भाष्य में वात्स्यायन मुनिने आप्त का लक्षण कहा है जो कि साक्षात् सब पदार्थ विद्याओं का जानने वाला कपट आदि दोषों से रहित धर्मात्मा है जो कि सदा सत्य वादी सत्य मानी और सत्य कारी है जिस को पूर्ण विद्या से आत्मा में जिस प्रकार का ज्ञान है उसके कहने की इच्छा की प्रेरणा से सब मनुष्यों पर कृपा दृष्टि से सब सुख होने के लिये सत्य उपदेश का करने वाला है और जो पृथ्वी से ले के परमेश्वर पर्यंत सब पदार्थों को यथावत् साक्षात् करना और उसी के अनुसार वर्तना इसी का नाम

आप्तिहै इस आप्ति से जो युक्त होय उसको आप्त कहते हैं उसी के उपदेश का प्रमाण होता है इससे विपरीत मनुष्य का नहीं क्योंकि सत्य वृत्तांत काही नाम इतिहास है अनृत का नहीं सत्य प्रमाण युक्त जो इतिहास है वही सब मनुष्यों को ग्रहण करने के योग्य है इस्से विपरीत इतिहास का ग्रहण करना किसी को योग्य नहीं क्योंकि प्रमादी पुरुष के मिथ्यकहने का इतिहास में ग्रहण ही नहीं होता इसी प्रकार व्यासजी ने चारों वेदों की संहिताओं का संग्रह किया है इत्यादि इतिहासों को भी मिथ्याही जानना चाहिये जो आज काल के बने ब्रह्म वैवर्तादि पुराण और ब्रह्मयामल आदि तंत्र ग्रंथ हैं इनमें कहे इतिहासों का प्रमाण करना किसी मनुष्य को योग्य नहीं क्योंकि इनमे असंभव और अप्रमाण कपोल कल्पित मिथ्य इतिहास बहुत लिख रक्खे हैं और जो सत्य ग्रंथ शत पथ ब्राह्मणादि हैं उनके इतिहासों का कभी त्याग नहीं करना चाहिये॥

प्र० जो सूक्त और मंत्रों के ऋषि लिखे जाते हैं उन्हों नेही वेद रचे होंय ऐसा क्यों नहीं माना जाय उ० ऐसा मत कहो क्योंकि ब्रह्मादि ने भी वेदों को पढ़ा है सो श्वेताश्वतर आदि उपनिषदों में यह वचन है (यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै०) कि जिसने ब्रह्मा को उत्पन्न किया और ब्रह्मादि को सृष्टि की आदि में अग्नि आदि के द्वारा वेदों का भी उपदेश किया है उसी परमेश्वर के शरण को हम लोग प्राप्त होते हैं इसी प्रकार ऋषियों ने भी वेदों को पढ़ा है क्योंकि जब मरीच्यादि ऋषि और व्यासादि मुनियों का जन्म भी नहीं हुआ था उस समय में भी-

ब्रह्मादि के समीप वेदों का बर्तमान था इसमें मनुके श्लोकों की भी साक्षी है कि पूर्वोक्त अग्नि वायु रवि और अंगिरा से ब्रह्मा जी ने वेदों को पढ़ा था जब ब्रह्माजी ने वेदों को पढ़ा था तो व्यासादि और हम लोगों की तो कथा क्या ही कहनी है॥

प्र० वेद और श्रुति ये दो नाम ऋग्वेदादि संहिताओं के क्योंहुए हैं उ० अर्थ भेद से क्योंकि एक (विद) धातु ज्ञानार्थ है दूसरा (विद) सत्तार्थ है तीसरे (विद्लृ) का लाभ अर्थ है चौथे -(विद) का अर्थ विचार है इन चार धातुओं से करण और अधिकरणका रक में घञ् प्रत्यय करने से वेद शब्द सिद्ध होता है तथा (श्रु) धातु श्रवण अर्थ में है इससे करण कारक में क्तिन् प्रत्यय के होने से श्रुति शब्द सिद्ध होता है। जिनके पढ़ने से यथार्थ विद्या का विज्ञान होता है जिनको पढ़ कर विद्वान् होते हैं जिनसे सब सुखों का लाभ होता है और जिनसे ठीक२ सत्यासत्य का विचार मनुष्यों को होता है इससे ऋक् संहितादि का वेद नाम है वैसेही सृष्टिके आरंभसे आजपर्यंत और ब्रह्मादि से ले के हम लोग पर्यंत जिससे सब सत्य विद्याओं को सुनते आते हैं इससे वेदों का श्रुति नाम पड़ा है क्योंकि किसी देहधारी ने वेदों के बनाने वाले को साक्षात् कभी नहीं देखा इस कारण से जाना गया है कि वेद निराकार ईश्वर सेही उत्पन्न हुए हैं और उनको सुनते सुनतेही आज पर्यंत सब लोग चले आते हैं तथा अग्नि वायु आदित्य और अंगिरा इन चारों मनुष्यों को जैसे वादित्र को कोई बजावे वा काठ की पुतली को चेष्टा करावे इसी प्रकार ईश्वर ने उन को निमित्त मात्र किया था क्योंकि उनके ज्ञान से वेदों की

उत्पत्ति नहीं हुई किंतु इस्से यह जान्नाकि वेदोंमें जितने शब्द
अर्थ और संबंध हैं वे सब ईश्वर ने अपने ही ज्ञान से उनके द्वारा
प्रकट किये हैं ॥

प्र० वेदों की उत्पत्ति में कितने वर्ष होगये हैं उ० एक वृन्द छान
वे करोड़ आठ लाख बावन हज़ार नवसौ छहत्तर अर्थात्
(१९६०८५२९७६) वर्ष वेदों की और जगत की उत्पत्ति में हो गये हैं
और यह संवत् (१९३३) ७७ सतहत्तर वां वर्ष वर्त रहा है प्र०
यह कैसे निश्चय होय कि इतनेही वर्ष वेद और जगत् की उ·
त्पत्ति में बीत गये हैं उ० यह जो वर्त्तमान सृष्टि है इस्में सात
वें (७) वैवस्वत मनु का वर्त्तमान है इस्से पूर्व छः मन्वन्तर
हो चुके हैं स्वायंभुव १ स्वारोचिष २ औत्तमि ३ तामस ४ रैवत ५
चाक्षुष ६ ये छः तो बीत गये हैं और ७ सातवां वैवस्वत बर्त रहा
है और सावर्णि आदि ७ सात मन्वंतर आगे आवेंगे ये सब मिलके
१४ मन्वन्तर होते हैं और इकहत्तर चतुर्युगियों का नाम मन्व
न्तर धरागया है ॥ और ४३२०००० वर्ष की एक चतुर्युगी हो
ती है इस संख्या को प्रथम ७१ से फिर ६ से गुणा करने से जो हो
य उसमें २७ चौकड़ी और १ सत्ययुग १ त्रेता १ द्वापर और चलते
हुए कलियुग की गई वर्षों को जोड़ देने से वेद और सृष्टि
की उत्पत्ति का ठीक काल निकल आवेगा और ४३२००० वर्ष का
कलि इस से दूना द्वापर तिगुना त्रेता चौगुना सत्युग होता है
और विक्रमी सम्वत् १९३७ के समाप्ति पर ४९८२ वर्ष हाल
के अर्थात् २८ वें कलि की भुगत चुकी क्योंकि यह दिग्विजय
संवत् ३९ में बना है इस्से जो अध्यापक विलसन साहब

अध्यापक मोक्षमूलर साहेब आदि यूरोपखण्ड वासी विद्वानों ने बात कही है कि वेद मनुष्य के रचे हैं किंतु श्रुति नहीं हैं उनकी यह बात ठीक नहीं है और दूसरी यह की कोई कहता है (२४००) चौबीस सौ वर्ष वेदों की उत्पत्ति को हुए कोई (२९००) उनतीस सौ वर्ष कोई (३०००) तीन हज़ार वर्ष औ कोई कहता है (३१००) इकतीस सौ वर्ष वेदों को उत्पन्न हुए बीते हैं उनकी यह भी बात झूठी है क्योंकि उन लोगों ने हम आर्य्य लोगों की नित्य प्रति की दिन चर्या का लेख और संकल्प पठन विद्या को भी यथावत न सुना और न विचारा है नहीं तो इतने ही विचार से यह भ्रम उनको नहीं होता इस्से यह जानना अवश्य चाहिये कि वेदों की उत्पत्ति परमेश्वर से ही हुई है और जितने वर्ष अभी कुछ घर गिन आये हैं उतने ही वर्ष वेदों और जगत् की उत्पत्ति में भी हो चुके हैं इस्से क्या सिद्ध हुआ कि जिन २ ने अपनी २ देश भाषाओं में अन्य था व्याख्यान वेदों के विषय में किया है उन २ का भी व्याख्यान मिथ्या है क्योंकि जैसा प्रथम लिख आये हैं जब पर्यंत उतना काल व्यतीत न हो चुकेगा तब पर्य्यंत ईश्वरोक्त वेद का पुस्तक यह जगत् और हम सब मनुष्य लोग भी ईश्वर के अनुग्रह से सदा वर्तमान रहेंगे ॥

इति वेदोत्पत्ति विचारः ॥

इति श्री मत्परमहंस परिब्राजकाचार्य श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती दिग्विजयार्कीये द्वितीयांके वेदोत्पत्ति नाम प्रथमो मयूखः ॥१॥

विरजानन्द दण्डी

835

अथ वेदानां नित्यत्व विचारः ॥

भाषार्थ

अब वेदों के नित्यत्व का बिचार किया जाता है सो वेद ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं इस्से वे स्वतः नित्य स्वरूप ही हैं क्योंकि ईश्वर का सब सामर्थ्य नित्य ही है ॥

प्र० इस विषय में कितने ही पुरुष ऐसी शंका करते हैं कि वेदों में शब्द छन्द पद और वाक्यों के योग होने से नित्य (१) नहीं हो सके जैसे बिना बनाने से घड़ा नहीं बनता इसी प्रकार से वेदों को भी किसी ने बनाया होगा क्योंकि बनाने के पहिले नहीं थे और प्रलय के अन्त में भी न रहेंगे इस्से वेदों को नित्य मानना ठीक नहीं है उ० ऐसा आपको कहना उचित नहीं क्योंकि शब्द दो प्रकार का होता है एक नित्य और दूसरा कार्य्य इनमें से जो शब्द अर्थ और संबंध परमेश्वर के ज्ञान में हैं वे सब नित्य ही होते हैं और जो हम लोगों की कल्पना से उत्पन्न होते हैं वे सब कार्य्य होते हैं क्योंकि जिस का ज्ञान और क्रिया स्वभाव से सिद्ध और अनादि हैं उसका सब सामर्थ्य भी नित्य ही होता है इस्से वेद भी उसकी विद्या स्वरूप होने से नित्य ही हैं क्योंकि ईश्वर की विद्या अनित्य कभी नहीं हो सकती ॥

---

(१) नित्य उसको कहते हैं जिस की कभी उत्पत्ति और नाश न हो और नित्यपन का नाम नित्यत्व है

प्र० जब सब जगत् के परमाणु अलग २ होके कारण रूप हो जाते हैं तब जो कार्य रूप सब स्थूल जगत् है उसका अभाव होजाता है उस समय वेदों के पुस्तकों का भी अभाव हो जाता है फिर वेदों को नित्य क्यों मानते हो उ० यह बात पुस्तक, पत्र, मसी और अक्षरों की बनावट आदि पक्ष में घटती है तथा हम लोगों के क्रिया पक्ष में भी बन सक्ती है वेद पक्ष में नहीं घटती क्योंकि वेद तो शब्द अर्थ और संबन्ध स्वरूप ही हैं मसी कागज़ पत्र पुस्तक और अक्षरों की बनावट रूप नहीं है यह जो मसी लेख आदि क्रिया है सो मनुष्यों की बनाई है इससे यह अनित्य है और ईश्वर के ज्ञान में सदा बने रहने से वेदों को हम लोग नित्य मानते हैं इससे क्या सिद्ध हुआ कि पढ़ना पढ़ाना और पुस्तक के अनित्य होने से वेद अनित्य नहीं हो सक्ते क्योंकि वे बीजांकुर न्यायसे ईश्वर के ज्ञान में नित्य वर्त्तमान रहते हैं सृष्टि की आदि में ईश्वर से वेदों की प्रसिद्धि होती है और प्रलय में जगत् के नहीं रहने से उनकी अप्रसिद्धि होती है इस कारण से वेद नित्य स्वरूपही बने रहते हैं जैसे इस कल्प की सृष्टि में शब्द अक्षर अर्थ और संबंध वेदों में हैं इसी प्रकार से पूर्व कल्प में थे और आगे भी होंगे क्योंकि जो ईश्वर की विद्या है सो नित्य एकही रसबनी रहती है उनके एक अक्षर का भी विपरीत भाव कभी नहीं होता सो ऋग्वेद से लेके चारों वेदों की संहिता अब जिस प्रकार की हैं कि इनमें शब्द अर्थ संबंध पद और अक्षरों का जिस क्रम से वर्त्तमान है इसी प्रकार का क्रम सब दिन बना रहता है क्योंकि ईश्वर का ज्ञान नित्य है उसकी वृद्धि क्षय और विपरीतता कभी नहीं होती इस कारण से सब वेदों को

सिद्ध हुआ कि शब्द आकाश की नाईं नित्यही हैं जब व्याकरण शास्त्र के मत से सब शब्द नित्य होते हैं तो वेदों के शब्दों की कथा तो क्या ही कहनी है क्योंकि वेदों के शब्दों के शब्द तो सब प्रकार से नित्य ही बने रहते हैं ॥

इसी प्रकार जैमिनि मुनि ने भी शब्द को नित्य माना है (नित्यस्तु स्याद्दर्शनस्य परार्थत्वात्। पूर्व मीमांसा। अ०१ पा०१ सू०१८) शब्द में जो अनित्य होने की शंका आती है उसका (तु) शब्द से निवारण किया है शब्द नित्य ही है अर्थात् नाश रहित हैं क्योंकि उच्चारण किया से जो शब्द का श्रवण होता है सो अर्थ के जनाने ही के लिये है इस से शब्द अनित्य नहीं हो सक्ता जो शब्द का उच्चारण किया जाता है उसकी ही प्रत्यभिज्ञा होती है कि श्रोत्र द्वारा ज्ञान के बीच में वही शब्द स्थिर रहता है फिर उसी शब्द से अर्थ की प्रतीति होती है जो शब्द अनित्य होता तो अर्थ का ज्ञान कौन कराता क्योंकि वह शब्द ही नहीं रहा फिर अर्थ को कौन जनावेगा और जैसे अनेक देशों में अनेक पुरुष एक काल में ही एक गो शब्द का उच्चारण करते हैं इसी प्रकार उसी शब्द का उच्चारण वारंवार भी होता है इस कारण से भी शब्द नित्य हैं जो शब्द अनित्य होता तो यह व्यवस्था कभी नहीं बन सकी सो जैमिनि मुनि ने इस प्रकार के अनेक हेतुओं से पूर्व मीमांसा शास्त्र में शब्द को नित्य सिद्ध किया है ॥

इसी प्रकार वैशेषिक शास्त्र में कणादि मुनि ने भी कहा है (तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्। वैशेषिके। अ०१ सू०३ अस्यायमर्थः) वेद ईश्वरोक्त हैं इन में सत्यविद्या और पक्षपात रहित धर्म का ही प्रतिपादन है इस से चारों वेद नित्य हैं ऐसा ही सब मनुष्यों को मानना उचि-

त है क्योंकि ईश्वर नित्य है इस्से उसकी विद्या भी नित्य है ॥
वैसे ही न्यायशास्त्र में गोतम मुनि भी शब्द को नित्य कहते हैं (मंत्रायुर्वेद प्रामाण्य वच्च तत्प्रामाण्य माप्त प्रामाण्यात् । अ० २ पादे १ सू० ६७ अस्यायमर्थः) वेदों को नित्य ही मानना चाहिये क्योंकि सृष्टि के आरंभ से लेके आज पर्य्यंत ब्रह्मादि जितने आप्त होते आये हैं वे सब वेदों को नित्य ही मानते आये हैं उन आप्तों का अवश्य ही प्रमाण करना चाहिये क्योंकि आप्त लोग वे होते हैं जो धर्मात्मा कपट छलादि दोषों से रहित सब विद्याओं से युक्त महायोगी और सब मनुष्यों के सुख होने के लिये सत्य का उपदेश करने वाले हैं जिनमें लेशमात्र भी पक्षपात वा मिथ्याचार नहीं होता उन्हों ने वेदों का यथावत् नित्य गुणों से प्रमाण किया है जिन्होंने आयुर्वेद को बनाया है जैसे आयुर्वेद (वैद्यक शास्त्र) के एक देश में कहे औषध और पथ्य के सेवन करने से रोग की निवृत्ति और सुख प्राप्त होता है जैसे उसके एक देश के कहे के सत्य होने से उसके दूसरे भाग का भी प्रमाण होता है इसी प्रकार वेदों का भी प्रमाण करना सब मनुष्यों को उचित है क्योंकि वेद के एक देश में कहे अर्थ का सत्यपन विदित होने से उस्से भिन्न जो वेदों के भाग हैं कि जिनका अर्थ प्रत्यक्ष न हुआ हो उनका भी नित्य प्रमाण अवश्य करना चाहिये क्योंकि आप्त पुरुष का उपदेश मिथ्या नहीं हो सक्ता (मंत्रायु०) इस ऊपर लिखे सूत्र के भाष्य में वात्स्यायन मुनि ने वेदों का नित्य होना स्पष्ट प्रतिपादन किया है कि जो आप्त लोग हैं वे वेदों के अर्थ को देखने दिखाने और जनाने वाले हैं जो २ उस २ मन्त्र के अर्थ के द्रष्टा वक्ता होते हैं

वेही आयुर्वेद आदि के बनाने वाले हैं जैसे उनका कथन आयुर्वेद में सत्य है वैसेही वेदों के नित्य मानने का उनका जो व्यवहार है सोभी सत्य ही है ऐसा मानना चाहिये क्योंकिजैसे आप्तों के उपदेश का प्रमाण अवशय होता है वैसेही सब आप्तों काभी जो परम आप्त सबका गुरु परमेश्वर है उसकेकिये वेदों काभी नित्य होने का प्रमाण अवश्य ही करना चाहिये॥

इस विषय में योग शास्त्र के कर्त्ता पतंजलि मुनि भी वेदों को नित्य मानते हैं (स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्॥ पातंजलि योग शास्त्रे। अ०१ पा०१ सू०२६) जोकि प्राचीन अग्नि वायु आदित्य अंगिरा और ब्रह्मादि पुरुष सृष्टि की आदि में उत्पन्न हुए थे उन से लेके हम लोग पर्यंत और हमसे आगे जो होने वाले हैं इन सब का गुरु परमेश्वर हीं है क्योंकि वेद द्वारा सत्य अर्थों का उपदेश करने से परमेश्वर का नाम गुरु है सोईश्वर नित्यही है क्योंकि ईश्वर में क्षणादि काल की गति का प्रचारही नहीं है और वह अविद्या आदि क्लेशों से और पाप कर्म तथा उनकी वासनाओं के भोगों से अलग है जिस में अनंत विज्ञान सर्वदा एकरस बना रहता है उसी के रचे वेदों काभी सत्यार्थ पन और पन भीनिश्चित है ऐसा ही सब मनुष्यों को जानना चाहिये॥

इसी प्रकार से सांख्य शास्त्र में कपिलाचार्य्य भी कहते हैं (निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम्॥ सू० ५१ अध्याय ५ :) परमेश्वरकी (निज) अर्थात् स्वाभाविक जो विद्या शक्ति है उससे प्रकट होने से वेदों का नित्यत्व और स्वतः प्रमाण सब मनुष्यों को स्वीकार करना चाहिये॥

इसी प्रकार से वेदांत शास्त्र में वेदों के नित्य होने के विषय में व्यासजीने भी लिखा है (शास्त्रयोनित्वात्। अ०१ पा०१ सू०३। अस्यायमर्थः) इस सूत्र के अर्थ में शंकराचार्य्य नेभी वेदों की नित्य मानके व्याख्यान किया है कि ऋग्वेदादि जो चारों वेद हैं वे अनेक विद्याओं से युक्त हैं सूर्य्य के समान सब सत्य अर्थों के प्रकाश करने वाले हैं उनका बनाने वाला सर्वज्ञादि गुणों से युक्त परब्रह्म है क्योंकि सर्वज्ञ ब्रह्म से भिन्न कोई जीव सर्वज्ञगुणयुक्त इन वेदों को बना सके ऐसा संभव कभी नहीं हो सक्ता किन्तु वेदार्थ विस्तार के लिये किसी जीव विशेष पुरुष से अन्य शास्त्र बनाने का संभव होता है जैसे पाणिनि आदि मुनियों ने व्याकरणादि शास्त्रों को बनाया है उनमें विद्या के एक २ देश का प्रकाश किया है सो भी वेदों के आश्रय से बना सके हैं और जो सब विद्याओं से युक्त वेद हैं उनको सिवाय परमेश्वर के दूसरा कोई भी नहीं बना सक्ता क्योंकि परमेश्वर से भिन्न सब विद्याओं में पूर्ण कोई भी नहीं है किंच परमेश्वर के बनाये वेदों के पढ़ने बिचारने और उसी के अनुग्रह से मनुष्यों को यथा शक्ति विद्या का बोध होता है अन्यथा नहीं ऐसा शंकराचार्य्य ने भी कहा है इससे क्या आया कि वेदों के नित्य होने में सब आर्य्य लोगों की साक्षी है और यह भी कारण है कि जो ईश्वर नित्य और सर्वज्ञ है उसके किये वेद भी नित्य और सर्वज्ञ होने के योग्य हैं अन्य का बनाया ऐसा ग्रंथ कभी नहीं हो सक्ता (अत एव च नित्यत्वम्। पा०३ सू०२९) इस सूत्र से भी यही आता है कि वेद नित्य हैं और सब सज्जन लोगों को भी ऐसा ही मानना उचित है तथा वेदों के प्रमाण और नित्य होने में अन्य शास्त्रों की

प्रमाणों को साक्षी के समान जानना चाहिये क्योंकि वे अपनेही प्रमाण से नित्य सिद्ध हैं जैसे सूर्य के प्रकाश में सूर्यकाही प्रमाण है अन्य का नहीं जैसे सूर्य्य प्रकाश स्वरूप है पर्वत से लेके त्रसरेणु पर्य्यंत पदार्थों का प्रकाश करता है वैसे वेद भी स्वयं प्रकाश हैं और सब सत्य विद्याओं का भी प्रकाश कर रहे हैं॥

ऐसेही परमेश्वर ने अपने और अपने किये वेदों के नित्य और स्वतः प्रमाण होने का उपदेश किया है सो आगे लिखते हैं (सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्॥ कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥१॥ य० अ० ४० मं० ८॥ अस्यायमभिप्रायः) यह मंत्र ईश्वर और उसके किये वेदों का प्रकाश करता है कि जो ईश्वर सर्वव्यापक आदि विशेषण युक्त है सो सब जगत् में परिपूर्ण हो रहा है इसकी व्याप्ति से एक परमाणु भी रहित नहीं है सो ब्रह्म (शुक्रं) सब जगत् का करने वाला और अनंत विद्यादि बल से युक्त है (अकायं) जो स्थूल सूक्ष्म और कारण इन तीनों शरीरों के संयोग से रहित है अर्थात् वह कभी जन्म नहीं लेता (अव्रणं) जिसमें एक परमाणु भी छिद्र नहीं कर सक्ता इसी से वह सर्वथा छेद रहित है (अस्नाविरं) वह नाड़ियों के बंधन से अलग है जैसा वायु और रुधिर नाड़ियों बंधा रहता है ऐसा बंधन परमेश्वर में नहीं होता (शुद्ध) जो अविद्या अज्ञानादि क्लेश और सब दोषों से पृथक है (अपापविद्धम्) सो ईश्वर पाप युक्त वा पाप करने वाला कभी नहीं होता क्योंकि वह स्वभाव सेही धर्मात्मा है (कविः) जो सब का जानने वाला है (मनीषी) जो सब का

अंतर्यामी है और भूत भविष्यत् तथा वर्तमान इन तीनों कालों के व्यवहारों को यथावत् जानता है (परिभूः) जो सब के ऊपर विराजमान हो रहा है (स्वयंभूः) जो कभी उत्पन्न नहीं होता और उसका कारण भी कोई नहीं किंतु वही सबका कारण अनादि और अनंत है इससे वही सबका माता पिता है और अपनेही सत्यसामर्थ्य से सदा वर्तमान रहता है इत्यादि लक्षणों से युक्त जो सच्चिदानंद स्वरूप परमेश्वर है (शाश्वतीभ्यः०) उसने सृष्टि की आदि में अपनी प्रजा को जोकि उसके सामर्थ्य में सदा से वर्तमान है उसके सब सुखों के लिये (अर्थान्व्यदधात्) सत्य अर्थों का उपदेश किया है इसी प्रकार जब२ परमेश्वर सृष्टि को रचता है तब२ प्रजा के हित के लिये सृष्टि की आदि में सब विद्याओं से युक्त वेदों का भी उपदेश करता है और जब२ सृष्टि का प्रलय होता है तब२ वेद उसके ज्ञान में सदा बने रहते हैं इससे उनको सदैव नित्य मानना चाहिये ॥

जैसे शास्त्रों के प्रमाणों से वेद नित्य हैं वैसेही युक्ति से भी उनका नित्यपन सिद्ध होता है क्योंकि असत् से सत् का होना अर्थात् अभाव से भाव का होना कभी नहीं हो सक्ता तथा सत् का अभाव भी नहीं हो सक्ता जो सत्य है उसी से आगे प्रवृत्ति भी हो सक्ती है और जो वस्तु ही नहीं है उससे दूसरी वस्तु किसी प्रकार से नहीं हो सक्ती इस न्याय से वेदों को नित्यही मानना ठीक है क्योंकि जिसका मूल नहीं होता है उसकी डाली पत्र पुष्प और फल आदि भी कभी नहीं हो सक्ते जैसे कोई कहे कि, वंध्या के पुत्र का विवाह मैंने देखा यह उसकी बात असंभव है क्योंकि जो उसके पुत्र होता तो वह वंध्या

जो कारण में उनकी परमाणु रूप अवस्था होती है उसको विना
श कहते हैं और जो द्रव्य संयोग से स्थूल होते हैं वे चक्षु आदि इं-
द्रियों से देखने में आते हैं फिर उन स्थूल द्रव्यों के परमाणुओं का
जब वियोग हो जाता है तब सूक्ष्म के होने से वे द्रव्य देख नहीं
पड़ते इसका नाम नाश है क्योंकि अदर्शन कोही नाश कहते हैं
जो द्रव्य संयोग और वियोग से उत्पन्न और नष्ट होता है उसी
को कार्य्य और अनित्य कहते हैं और जो संयोग और वियोग
से अलग है उसकी न कभी उत्पत्ति और न कभी नाश होता है इस
प्रकार का पदार्थ एक परमेश्वर और दूसरा जगत् का कारण है
क्योंकि वह सदा अखंड एक रस ही बना रहता है इसीसे उसको नि-
त्य कहते हैं इस में कणादि मुनि के सूत्र का भी प्रमाण है (सदकार-
णवन्नित्यम्) वै॰ अ॰ ४ सू॰ १ इसका अर्थ यह है कि जो किसी का
कार्य्य है कि कारण से उत्पन्न होके विद्यमान होता है उसको अनि-
त्य कहते हैं जैसे मिट्टी से घड़ा होके वह नष्ट भी हो जाता है इ-
सी प्रकार परमेश्वर के सामर्थ्य कारण से सब जगत् उत्पन्न हो
के विद्यमान होता है फिर प्रलय में स्थूलाकार नहीं रहता किंतु
वह कारण रूप तो सदा ही बना रहता है इस्से क्या आया कि जो
विद्यमान हो और जिसका कारण कोई भी न हो अर्थात् स्वयंकार-
ण रूपही हो उसको नित्य कहते हैं क्योंकि जो २ संयोग से उत्पन्न
होता है सो २ बनाने वाले की अपेक्षा अवश्य रखता है जैसे कर्म नियम
और कार्य्य ये सब कर्ता नियन्ता और कारण को ही सदा जनाते
हैं और जो कोई ऐसा कहै कि कर्त्ता को भी किसी ने बनाया होगा
तो उस्से पूछना चाहिये कि उस कर्त्ता के कर्त्ता को किसने बनाया इ-

सी प्रकार यह अनवस्था प्रसंग अर्थात् मर्यादा रहित होता है जिसकी मर्यादा नहीं है वह व्यवस्था के योग्य नहीं ठहर सक्ता और जो संयोग से उत्पन्न होता है वह प्रकृति और परमाणु आदि के संयोगकरने में समर्थ ही नहीं हो सक्ता इससे क्या आया कि जो जिस्से सूक्ष्म होता है वही उसका आत्मा होता है अर्थात् स्थूल में सूक्ष्म व्यापक होता है जैसे लोहे में अग्नि प्रविष्ट होके उसके सब अवयवों में व्याप्त होता है और जैसे जल पृथ्वी में प्रविष्ट होके उसके कणों के संयोग से पिंडा करने में हेतु होता है तथा उसका छेदन भी करता है वैसे ही परमेश्वर सब संयोग और वियोग से पृथक् सब में व्यापक प्रकृति और परमाणु आदि से भी अत्यंत सूक्ष्म और चेतन है इसी कारण से प्रकृति और परमाणु आदि द्रव्यों के संयोग करके जगत् को रच सक्ता है जो ईश्वर इससे स्थूल होता तो उनको ग्रहण और रचन कभी नहीं कर सक्ता क्योंकि जो स्थूल पदार्थ होते हैं वे सूक्ष्म पदार्थों के नियम करने में समर्थ नहीं होते जैसे हम लोग प्रकृति और परमाणु आदि के संयोग और वियोग करने में समर्थ नहीं है क्योंकि जो संयोग वियोग के भीतर है वह उसके संयोग वियोग करने में समर्थ नहीं हो सक्ता तथा जिस वस्तु से संयोग वियोग का आरंभ होता है वह वस्तु संयोग और वियोग से अलग ही होता है क्योंकि वह संयोग और वियोग के आरंभ के नियमों का करता और आदि कारण होता है तथा आदि कारण के अभाव से संयोग और वियोग का होना ही असंभव है इससे क्या जानना चाहिये कि जो सदा निर्विकार स्वरूप अज अनादि नित्य सत्य सामर्थ्य से युक्त और अनंत विद्या वाला ईश्वर है उसकी विद्या से वेदों के

प्रगट होने और उसके ज्ञान में वेदों के सदैव वर्तमान रहने से वेदों को सत्यार्थ युक्त और नित्य सब मनुष्यों को मानना योग्य है यह संक्षेप से वेदों के नित्य होने का विचार किया॥

इति वेद नित्यत्व विचारः

अब वेदों के नित्यत्व विचार के उपरान्त वेदों में कौन२ विषय किस२ प्रकार के हैं इसका विचार किया जाता है वेदों में अवयव रूप विषय तो अनेक हैं परन्तु उनमें चार मुख्य हैं (१) एक विज्ञान अर्थात् सब पदार्थों को यथार्थ जानना (२) दूसरा कर्म (३) तीसरा उपासना और (४) चौथा ज्ञान है विज्ञान उसको कहते हैं कि जो कर्म उपासना और ज्ञान इन तीनों से यथावत् उपयोग लेना और परमेश्वर से लेके तृणपर्य्यंत पदार्थों का साक्षाद्बोध का होना उनसे यथावत् उपयोग का करना इससे यह विषय इन चारों में भी प्रधान है क्योंकि इसी में वेदों का मुख्य तात्पर्य्य है सोभी दो प्रकार का है एक तो परमेश्वर का यथावत् ज्ञान और उसकी आज्ञा का बराबर पालन करना और दूसरा यह है कि उसके रचे हुए सब पदार्थों के गुणों को यथावत् विचार के उन से कार्य्य सिद्ध करना अर्थात् ईश्वर ने कौन२ पदार्थ किस२ प्रयोजन के लिये रचे हैं और इन दोनों में से भी ईश्वर का जो प्रति पादन है सोही प्रधान है इसमें आगे कठवल्ली आदि के प्रमाण लिखते हैं (सर्वे वेदायत्पद मामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरंति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्यो मित्येतत्॥ कठोप० वल्ली २ मं० १५॥) परम पद अर्थात् उसका नाम मोक्ष है

जिस में पर ब्रह्म को प्राप्त होके सदा सुख में ही रहना जो सब आनन्दों से युक्त सब दुखों से रहित और सर्व शक्तिमान् पर ब्रह्म है जिस के नाम (ओं) आदि हैं उसी में सब वेदों का मुख्य तात्पर्य्य है इसमें योग सूत्र का भी प्रमाण है (तस्य वाचकः प्रणवः योग शास्त्रे। अ०१ पा०१ सू०२७) परमेश्वर ही का ओंकार नाम है (ओं खं ब्रह्म यजुः० अ०४०) तथा (ओमिति ब्रह्म तैतिरीआरण्य के। प्र०७ अनु०८॥) ओं और खं ये दोनों ब्रह्म के नाम हैं और उसी की प्राप्ति कराने में सब वेद प्रवृत्त हो रहे हैं जिसकी प्राप्ति के आगे किसी पदार्थ की प्राप्ति उत्तम नहीं है क्योंकि जगत् का वर्णन दृष्टांत और उपयोगादि का करना ये सब पर ब्रह्म ॥ को ही प्रकाशित करते हैं तथा सत्य धर्म के अनुष्ठान जिनको तप कहते हैं वेभी परमेश्वर को ही प्राप्ति के लिये हैं तथा ब्रह्म चर्य्य गृहस्थ वान प्रस्थ और सन्यास आश्रम के सत्याचरण रूप जो कर्म हैं वे भी परमेश्वर की ही प्राप्ति कराने के लिये हैं जिस ब्रह्म की प्राप्ति की इच्छा करके विद्वान् लोग प्रयत्न और उसीका उपदेश भी करते हैं॥ नचिकेता और यम इन दोनों का परस्पर यह संवाद है कि हे नचिकेतः जो अवश्य प्राप्ति करने के योग्य पर ब्रह्म है उसी का मैं तेरे लिये संक्षेप से उपदेश करता हूं और यहां यह भी जानना उचित है कि अलंकार रूप कथा से नचिकेता नाम से जीव और यम से अन्तर्यामी परमात्मा को समझना चाहिये (तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिष मिति। अथ परा यया तदक्षर मधि गम्यते॥१॥ यत्तद द्रेश्यम ग्राह्यम गोत्र-

म वर्णम चक्षुः श्रोत्रं तदपाणि पादं नित्यं विभुं सर्व गतं सुसूक्ष्मं तद् व्ययं यद्भूतयोनिं परि पश्यन्ति धीराः ॥२॥ मुण्डक १ खं॰ ड १ म॰५।६।) वेदों में दो विद्या हैं एक अपरा दूसरी परा इन में से अपरा यह है कि जिस्से पृथवी और तृण से लेके प्रकृति पर्य्यंत पदार्थों के गुणों के ज्ञान से ठीक२ कार्य्य सिद्ध करना होता है और दूसरी परा कि जिस्से सर्व शक्तिमान् ब्रह्म की यथा॰ वत् प्राप्ति होती है यह परा विद्या अपरा विद्या से अत्यंत उत्तम है क्योंकि अपरा काही उत्तम फल परा विद्या है॥

और भी इस विषय में ऋग्वेद का प्रमाण है कि (तद्विष्णोः पर मं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवी वचक्षुरा ततम् ॥१॥ ऋग्वेदे। अष्टके १ अध्याये २ वर्गे ७ मंत्रः ५॥ अस्यायमर्थः) (विष्णु) अर्थात् व्यापक जो परमेश्वर है उसका (परमं) अत्यन्त उत्तम आनन्द स्वरूप (पदं) जो प्राप्त होने के योग्य अर्थात् जिस का नाम मोक्ष है उसको (सूरयः) विद्वान् लोग (सदा पश्यन्ति) सब काल में देखते हैं वह कैसा है कि सब में व्याप्त हो रहा है और उसमें देश काल और वस्तु का भेद नहीं है अर्थात् उस दे॰ श में है और इस देश में नहीं तथा उस काल में था और इस काल में नहीं उस वस्तु में है और इस वस्तु में नहीं इसीकारण से वह पद सब जगह में सब को प्राप्त होता है क्योंकि वह ब्रह्म सब ठिकाने परि पूर्ण है इसमें यह दृष्टान्त है कि (दिवी वचक्षु॰ रा ततम्) जैसे सूर्य का प्रकाश आवर्ण रहित आकाश में व्याप्त होता है और जैसे उस प्रकाशक में नेत्र की दृष्टि व्याप्त होती है इसी प्रकार पर ब्रह्म पद भी स्वयं प्रकाश सर्वत्र व्याप्त वान् हो

रहा है उस पद की प्राप्ति से कोई भी प्राप्ति उत्तम नहीं है इसलिये चारों वेद उसी की प्राप्ति कराने के लिये विशेष करके प्रतिपादन कर रहे हैं इस विषय में वेदांत शास्त्र में व्यास मुनि के सूत्र का भी प्रमाण है (तत्तु समन्वयात्) सब वेद वाक्यों में ब्रह्म का ही विशेष करके प्रतिपादन है कहीं २ साक्षात् रूप और कहीं २ परंपरा से इसी कारण से वह पर ब्रह्म वेदों का परम अर्थ है तथा इस विषय में यजुर्वेद का भी प्रमाण है कि (यस्मान्नजा०) जिस पर ब्रह्म से (अन्यः) दूसरा कोई भी (परः) उत्तम पदार्थ (जातः) प्रगट (नास्ति) अर्थात् नहीं है (य आविवेश भु०) जो सब विश्व अर्थात् सब जगह में व्याप्त हो रहा है (प्रजापतिः प्र०) वही सब जगत का पालन कर्त्ता और अध्यक्ष है जिसने (त्रीणि ज्योतीं ᳸षि) अग्नि सूर्य और बिजुली इन तीन ज्योतिषों को प्रजा के प्रकाश होने के लिये (सचते) रच के संयुक्त किया है और जिसका नाम (षोडशी) है अर्थात् (१) ईक्षण जो यथार्थ विचार (२) प्राण जो कि सब विश्व का धारण करने वाला (३) श्रद्धा सत्य में विश्वास (४) आकाश (५) वायु (६) अग्नि (७) जल (८) पृथिवी (९) इंद्रिय (१०) मन अर्थात् ज्ञान (११) अन्न (१२) वीर्य्य अर्थात् बल और पराक्रम (१३) तप अर्थात् धर्मानुष्ठान सत्याचार (१४) मंत्र अर्थात् वेद विद्या (१५) कर्म अर्थात् सब चेष्टा (१६) नाम अर्थात् दृश्य और अदृश्य पदार्थों की संज्ञा येही सोलह कला कहाती हैं ये सब ईश्वर ही के बीच में हैं इससे उसको षोडशी कहते हैं इन षोडश कलाओं का प्रतिपादन प्रश्नोपनिषद् के छठे प्रश्न में लिखा है इससे परमेश्वर ही वेदों का मुख्य अर्थ है और उस से

अर्थात् जो यह जगत् है सो वेदों का गौण अर्थ है और इन दोनों में से प्रधान का ही ग्रहण होता है इस से क्या आया कि वेदों का मुख्य तात्पर्य परमेश्वर ही के प्राप्ति कराने और प्रतिपादन करने में है उस परमेश्वर के उपदेश रूप वेदों से कर्म उपासना और ज्ञान तीनों कांडों का इस लोक और परलोक के व्यवहारों के फलों की सिद्धि और यथावत् उपकार करने के लिये सब मनुष्य इन चार विषयों के अनुष्ठानों में पुरुषार्थ करें यही मनुष्य देह धारण करने के फल हैं॥

अनाड़ी इस के श्री स्वामी जी महाराज ने वेदों का दूसरा विषय कर्म कांड (जो अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध तक सकाम व निष्काम दो प्रकार का होता है) वेदादिक अनेक प्रमाणों से सिद्ध करके भूमिका के पृष्ठ ४६ से लेकर ७१ तक वर्णन किया है निवेदन कार ने उस पर कुछ तर्क वितर्क नहीं किया इस लिये हमने उसकी नकल नहीं की परन्तु वह परमोपकारी होने के कारण सब मनुष्यों के देखने व समझने और अवश्य करने के योग्य है॥

इस कर्म काण्ड में जहां तहां अग्न्यादि कई देवताओं का ग्रहण किया है उनमें कोई जड़ कोई चेतन्न हैं वे सब व्यवहारिक देव वा देवता कहाते हैं उनका ठीक २ वैसा ही व्यवहारिक (प्रकार का अर्थ किसी में एक किसी में दो वा अधिक व्याकरण रीत्यादि व धातु से सिद्ध होता है जैसा कि पूर्व लिखे हैं॥ इस लिये इन का देवतात्व सब को वैसा ही कल्पना उचित है जैसा कि जिस से व्यवहार का काम निकलता है अर्थात् इन में से कोई उपासना के योग्य नहीं है सब लोगों को उपास्य और परम पूज्य केवल वही परब्रह्म परमेश्वर है जिसने इन सब देवतादिक पदार्थों को निर्माण व

प्रकाशित किया है और उसी में दिव धातु के ठीक २ दसों अर्थ कि जिनमें से पांच जो केवल व्यवहारिक अर्थ बोधक हैं व्यापकता के कारण और शेष पांच जोकि परमार्थ बोधक हैं वे द्योतकता के कारण संघटित होते हैं ॥

ऐसा वेदों का सिद्धान्त स्पष्ट विद्यमान होते जिनको अल्प बुद्धिता के कारण विदित नहीं हुआ उन्हों ने वेदों के विषय में जो जी में आया सो लिख दिया है उनके संदेह निवृत्त्यर्थ महाराज जी ने पृष्ठ ७२ से ८० तक बहुत से वेदादिक प्रमाण लिख कर उनका अर्थ संस्कृत और भाषा में विस्तार पूर्वक प्रकाशित किया है उसका सारांश नीचे लिखकर पीछे वेद संज्ञा विचार ज्यों का त्यों नक़ल होगा ॥

कितने ही आर्य और अंगरेज़ कहते हैं कि वेदों में पृथिव्यादिक भूत पूजा लिखी है आर्य लोगों ने बहु दिन उनको पूजते २ पीछे से परमेश्वर को जाना यह उनका कहना (इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः ससुपर्णो गरुत्मान् ॥ एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः) इत्यादिक अनेक वेद मन्त्रों का अर्थ देख मिथ्या सिद्ध होता है और साबित होता है कि आर्य लोग सृष्टि के आरम्भ से इन्द्र सूर्य वरुण अग्नि कुवेर ईश आदि नामों से उसी एक परमेश्वर को पूजते आए हैं ॥

डाक्टर मोक्ष मूलर साहब ने अपने संस्कृत साहित्य नामक ग्रंथ में लिखा है कि आर्य लोगों को बहुत काल पीछे ईश्वर का ज्ञान हुआ और वेदों के प्राचीन होने में एक भी प्रमाण नहीं मिलता परंतु उनके नवीन होने में अनेक प्रमाण पाये जाते हैं उनमें से एक

हिरण्यगर्भ शब्द का प्रमाण दिया है और कहा कि छन्दोभाग से मंत्र भाग दो सौ वर्ष पीछे बना है और दूसरी यह बात कही है कि वेदों में दो भाग हैं एक छन्द और दूसरा मंत्र उनमें से छन्दो भाग ऐसा है जो सामान्य अर्थ के साथ संबंध रखता है और दूसरे की प्रेरणा से प्रकाशित हुआ मालूम पड़ता है कि जिसकी उत्पत्ति बनाने वाले की प्रेरणा से नहीं हो सक्ती और उसमें कथन इस प्रकार का है जैसे अज्ञानी के मुख से अकस्मात् बचन निकला हो उसकी उत्पत्ति में (३१००) इकत्तीस सौ बर्ष व्यतीत हुए हैं और मंत्र भाग की उत्पत्ति में (२९००) उनतीस सौ बर्ष हुए हैं उसमें (अग्निः पूर्वेभिः०) इस मंत्र का भी प्रमाण दिया है सो उनका यह कहना ठीक नहीं हो सक्ता क्योंकि उन्हों ने (हिरण्यगर्भः०) और (अग्निःपूर्वेभिः०) इन दोनों मंत्रों का अर्थ यथावत् नहीं जाना है तथा मालूम होता है कि उनको हिरण्यगर्भ शब्द नवीन जान पड़ा होगा इस विचार से कि हिरण्य नाम है सोने का वह सृष्टि से बहुत पीछे उत्पन्न हुआ है अर्थात् मनुष्यों की उन्नति राजा और प्रजा के प्रबंध होने के उपरान्त पृथिवी में से निकाला गया है सो यह बात भी उनकी ठीक नहीं हो सक्ती क्योंकि इस शब्द का अर्थ यह है कि ज्योति कहते हैं विज्ञान को सो जिसके गर्भ अर्थात् स्वरूप में है ज्योति अमृत अर्थात् मोक्ष है सामर्थ्य में जिसके और ज्योति जो प्रकाश स्वरूप सूर्य्यादि लोक जिस के गर्भ में हैं तथा ज्योति जो जीवात्मा जिसके गर्भ अर्थात् सामर्थ्य में तथा ज्योति यशः सत्कीर्ति जो धन्यवाद जिसके स्वरूप में है इसी प्रकार ज्योति इन्द्र अर्थात् सूर्य्य वायु और अग्नि ये सब जिस के

सामर्थ्य में हैं ऐसा जो एक परमेश्वर है उसीको हिरण्यगर्भ कहते हैं इस हिरण्यगर्भ शब्द के प्रयोग से वेदों का उत्तम पन और सनातन पन तो यथावत् सिद्ध होता है परन्तु इस से उनका नवीन पन सिद्ध कभी नहीं हो सक्ता इस्से डाक्तर मोक्ष मूलर साहेब का कहना जो वेदों के नवीन होने के विषय में है सो सत्य नहीं है और जो उन्हों ने (अग्निः पूर्वेभिः०) इसका प्रमाण वेदों के नवीन होने में दिया है सोभी अन्यथा है क्योंकि इस मंत्र में वेदों के करता त्रिकालदर्शी ईश्वर ने भूत भविष्यत् वर्त्तमान तीनों कालों के व्यवहारों को यथावत् जान के कहा है कि वेदों को पढ़ के जो विद्वान् हो चुके हैं वा जो पढ़ते हैं वे प्राचीन और नवीन ऋषि लोग मेरी स्तुति करें तथा ऋषि नाम मंत्र प्राण और तर्क कभी है इन से ही मेरी स्तुति करनी योग्य है इसी अपेक्षा से ईश्वर ने इस मंत्र का प्रयोग किया है इस्से वेदों का सनातन पन और उत्तम पन तो सिद्ध होता है किंतु उन हेतुओं से वेदों का नवीन होना किसी प्रकार से सिद्ध नहीं हो सक्ता इसी हेतु से डाक्तर मोक्ष मूलर साहेब का कहना ठीक नहीं ॥

इस में विचारना चाहिये कि वेदों के अर्थ को यथावत् बिना विचारे उनके अर्थ में किसी मनुष्य को हठ से साहस करना उचित नहीं क्योंकि जो वेद सब विद्याओं से युक्त हैं अर्थात् उनमें जितने मंत्र और पद हैं वे सब संपूर्ण सत्य विद्याओं के प्रकाश करने वाले हैं और ईश्वर ने वेदों का व्याख्यान भी वेदों से ही कर रक्खा है क्योंकि उनके शब्द धात्वर्थ के साथ योग रखते हैं इसमें निरुक्त का भी प्रमाण है जैसा कि यास्क मुनिने कहा है (तत्कृतीत०)

इत्यादि वेदों के व्याख्यान करने के विषय में ऐसा समझना कि जब तक सत्य प्रमाण सुतर्क वेदों के शब्दों का पूर्वापर प्रकरणों, व्याकरण आदि वेदांगों, शतपथ आदि पूर्वमीमांसा आदि शास्त्रों, और शाखांतरों, का यथावत् बोध न हो और परमेश्वर का अनुग्रह उत्तम विद्वानों की शिक्षा उनके संग से पक्षपात छोड़ के आत्मा की शुद्धि न हो तथा महर्षि लोगों के किये व्याख्यानों को न देखे तब तक वेदों के अर्थ का यथावत् प्रकाश मनुष्यों के हृदय में नहीं होता। इसलिये सब आर्य्य विद्वानों का सिद्धांत है कि प्रत्यक्षादि प्रमाणों से युक्त जो तर्क है वही मनुष्यों के लिये ऋषि है इससे यह सिद्ध होता है कि जो सायनाचार्य्य और महीधरादि अल्पबुद्धि लोगों के झूठे व्याख्यानों को देखके आजकाल के आर्य्यावर्त्त और यूरप देश के निवासी लोग जो वेदों के ऊपर अपनी २ देशभाषाओं में व्याख्यान करते हैं वे ठीक २ नहीं हैं और उन अनर्थ युक्त व्याख्यानों के मानने से मनुष्यों को अत्यन्त दुःख प्राप्त होता है, इससे बुद्धिमानों को उन व्याख्यानों का प्रमाण करना योग्य नहीं तर्क का नाम ऋषि होने से सब आर्य्य लोगों का सिद्धान्त है कि सब कालों में अग्नि जो परमेश्वर वही उपासना करने के योग्य है॥

इति श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री स्वामी दयानंद सरस्वती दिग्विजयार्के द्वितीयांके वेद नित्यत्व विचारो नाम द्वितीयो मयूखः॥२॥

अथ वेद संज्ञा विचारः

अथ कोयं वेदो नाम मन्त्र भाग संहित्यादि । किंच मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेद नाम धेय मिति कात्यायनोक्ते ब्राह्मण भाग स्यापि वेद संज्ञा कुतो न स्वीक्रियत इति । मैवंवाच्यम् । न ब्राह्मणा नांवेद संज्ञा भवितुमर्हति । कुतः । पुराणे तिहास संज्ञकत्वाद्वेद व्याख्यानाहृषिभिरुक्त त्वादनी श्वरोक्त त्वात्कात्यायनभिन्नै र्ऋषिभिर्वेद संज्ञाया मस्वीकृत त्वान्मनुष्य बुद्धि रचितत्वाच्चेति ॥

भाषार्थ

प्र० वेद किन का नाम है उ० मंत्र संहिताओं का प्र० जो कात्यायन ऋषिनेकहाहै कि मंत्र और ब्राह्मण ग्रंथों का नाम वेद है फिर ब्राह्मणभाग कोभी वेदों में ग्रहण आप लोग क्यों नहीं करते हैं उ० ब्राह्मण ग्रंथ वेद नहीं हो सक्ते क्योंकि उन्हींका नाम इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा, और नाराशंसी भी है वे ईश्वरोक्त नहीं हैं किंतु महर्षि लोगों के किये वेदों के व्याख्यान हैं एक कात्यायन को छोड़ के किसी अन्य ऋषि ने उनके वेद होने में साक्षी नहीं दी है और देहधारी पुरुषों के बनाये हैं इन हेतुओं से ब्राह्मण ग्रंथों की वेद संज्ञा नहीं हो सक्ती और मंत्र संहिताओं का वेद नाम इस लिये है कि ईश्वर रचित और सब विद्याओं का मूल है ॥

भाष्यम्

यथा ब्राह्मण ग्रन्थेषु मनुष्याणां नाम लेख पूर्वका लौकिका इतिहासाः सन्तिनचैवं मन्त्र भागे । किंचभो । त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् । यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ॥ २ ॥

यजुः० अ० ३ मं० ६२। इत्यादीनि वचनान्यृषीणां नामाङ्कितानि यजुर्वेदादिष्वपि दृश्यन्ते। अनेनेतिहासादिविषये मंत्रब्राह्मणयो स्तुल्यता दृश्यते पुनर्ब्राह्मणानामपि वेदसंज्ञा कुतो नमन्यते। भ्रमभञ्जनम्। नैवात्र जमदग्निकश्यपौ देहधारिणो मनुष्यस्य नाम्नीस्तः। अत्र प्रमाणम्। चक्षुर्वै जमदग्निर्ऋषिर्यदनेन जगत्पश्यत्यथो मनुते तस्माच्चक्षुर्जमदग्निर्ऋषिः। श० कां० ८ अ० १। कश्यपो वै कूर्मः प्राणो वै कूर्मः श० कां० ७ अ० ५। अनेन प्राणस्य कूर्मः कश्यपश्च संज्ञास्ति। शरीरस्थस्य भौतस्य कर्मीकारणवास्यैते। अनेन मन्त्रेणेश्वर एवं प्रार्थ्यते तद्यथा हे जगदीश्वर भवत्कृपया नोऽस्माकं जमदग्निसंज्ञकस्य चक्षुषः कश्यपाख्यस्य प्राणस्य च त्र्यायुषं त्रिगुणमर्थात् त्रीणि शतानि वर्षाणि यावत्तावदायुरस्तु। चक्षुरित्युपलक्षणमिन्द्रियाणां प्राणो मनआदीनां च (यद्देवेषु त्र्यायुषम्) अत्र प्रमाणम्। विद्वांसो हि देवाः। श० कं० ३ अ० ७। अनेन विदुषां देवसंज्ञास्ति। देवेषु विद्वत्सु यादृशमस्मादृशं सुखं त्रिगुणमायुर्भवति (तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्) तत्सेन्द्रियाणां सप्राणकानां नोऽस्माकं पूर्वोक्तं सुखयुक्तं त्रिगुणमायुरस्तु भवेत्। येन सुखयुक्ता वयं तावदायुर्भुंजीमहि। अनेनात्र दप्यु परिदृश्यते। ब्रह्मचर्यादिसुनियमैर्मनुष्यैरेतत् त्रिगुणमायुः कर्तुं शक्यमस्तीति गम्यते। अतोऽर्थाभिधायकैर्जमदग्न्यादिभिः शब्दैरर्थमात्रं वेदेषु प्रकाश्यते। अतो नात्र मन्त्रभागे ह्येतिहासलेशोऽप्यस्तीत्यवगन्तव्यम्। अतो यच्च सायणाचार्यादिभिर्वेदप्रकाशादिषु यत्र कुत्रेतिहासवर्णनं कृतं तद्भ्रममूलमस्तीति मन्तव्यम्।

भावार्थः

प्र० जैसे ऐतरेय आदि ब्राह्मण ग्रंथों में याज्ञवल्क्य मैत्रेयी गार्गी और जनक आदि के इतिहास लिखे हैं वैसे ही (त्र्यायुषं जमदग्नेः) इत्यादि वेदों में भी पाये जाते हैं इस्से मंत्र और ब्राह्मण भाग ये दोनों बराबर होते हैं फिर ब्राह्मण ग्रंथों को वेदों में क्यों नहीं मानते हो उ० ऐसा भ्रम मत करो क्योंकि जमदग्नि और कश्यप ये नाम देहधारी मनुष्यों के नहीं हैं इसका प्रमाण शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि चक्षु का नाम जमदग्नि और प्राण का नाम कश्यप है इस कारण से यहां प्राण से अंतःकरण और आंख से सब इन्द्रियों का ग्रहण करना चाहिये अर्थात् जिन से जगत् के सब जीव बाहर और भीतर देखते हैं (त्र्यायुषं ज०) सो इस मंत्र से ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये कि हे जगदीश्वर आप के अनुग्रह से हमारे प्राण आदि अंतःकरण और आंख आदि सब इन्द्रियों की (३००) तीन सौ वर्ष तक उमर बनी रहे (यद्देवेषु०) सो जैसी विद्वानों के बीच में विद्यादि शुभगुण और आनंद युक्त उमर होती है (तन्नोअस्तु०) वैसी ही हम लोगों की भी हो तथा (त्र्यायुषंजमदग्नेः०) इत्यादि उपदेश से यह भी जाना जाता है कि मनुष्य ब्रह्मचर्यादि उत्तम नियमों से त्रिगुण चतुर्गुण आयु कर सकता है अर्थात् (४००) चार सौ वर्ष तक भी सुख पूर्वक जी सकता है इस्से यह सिद्ध हुआ कि वेदों में सत्य अर्थ के वाचक शब्दों से सत्य विद्याओं का प्रकाश किया है लौकिक इतिहासों का नहीं इस्से जो सायणाचार्यादि लोगों ने अपनी २ बनाई टीकाओं में वेदों में जहां तहां इतिहास वर्णन किये हैं वे सब मिथ्या हैं ॥

भाष्यम्

तथा ब्राह्मण ग्रन्थानामेव पुराणेतिहासादिनामास्ति न ब्रह्मवैव-
र्त्त श्रीमद्भागवतादीनां चेति निश्चीयते। किंच भोः। ब्रह्मयज्ञ
विधाने यत्र क्वचिद् ब्राह्मण सूत्र ग्रन्थेषु। यद् ब्राह्मणानीतिहासा
न्पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरित्यादीनि वचनानि दृश्यन्ते
। एषां मूलमथर्ववेदेप्यस्ति। सबृहतीं दिशमनुव्यचलत्। तमि
तिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन्। इति
हासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धा
म भवति य एवं वेद ॥२॥ अथर्व० कां० १५ प्रपा० ३०। अनु०
१। अतो ब्राह्मण ग्रन्थेभ्यो भिन्ना भागवतादयो ग्रन्था इतिहासा
दि संज्ञया कुतो न गृह्यन्ते। मैवं वाचि। एतैः प्रमाणैर्ब्राह्मण
ग्रन्थानामेव ग्रहणं जायते न श्रीमद्भागवतादीनामिति। कुतः।
ब्राह्मणग्रन्थेष्वेवेतिहासादीनामन्तर्भावात्। तत्र देवासुराः सं
यत्ता आसन्नित्यादय इतिहासा ग्राह्याः। सदेव सोम्येदमग्र
आसीदेकमेवाद्वितीयम्। छन्दोग्योपनि० प्रपा० ६। आत्मा वा
इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत् किंचन मिषत्। इत्यैतरेयारण्य
कोपनि० अ० १ खं० १। आपो ह वा इदमग्रे सलिलमेवास।
श० कां० ११ अ० १। इदं वा अग्रे नैव किंचिदासीत्। इत्यादीनि
जगतः पूर्वावस्था कथन पूर्वकाणि वचनानि ब्राह्मणानां सर्ग
तान्येव पुराणानि ग्राह्याणि। कल्पा मन्त्रार्थ सामर्थ्य प्रकाशकाः
। तद्यथा। इषे त्वोर्जे त्वेति वृष्ट्यै तदाह। यदाहेषे त्वोर्जे त्वेति
यो वृष्टादूर्ग्रसो जायते तस्मै तदाह सविता वै देवानां प्रसविता
सविता प्रसूत्याः श० कां० १ अ० ७। इत्यादयो ग्राह्याः। गाथा या:

ज्ञवल्क्य जनक संवादो यथा शतपथ ब्राह्मणे गार्गी मैत्रेय्या
दीनां परस्परं प्रश्नोत्तर कथन युक्ताः सन्तीति । नाराशंस्यश्च
। अत्राह यास्काचार्यः । नराशंसो यज्ञ इति कात्थक्यो नरा अ
स्मिन्नासीनाः शंसन्त्यग्निरिति शाकपूणिर्नरैः प्रशस्यो भवति
। नि० अ० ८ खं० ६ ॥ नराणां यत्र प्रशंसा नृभिर्यत्र प्रशस्यते ता
ब्राह्मण निरुक्तान्तर्गताः कथा नाराशंस्यो ग्राह्या नातोऽन्या
इति किञ्च तेषु तेषु वचनेष्वपीदमेव विज्ञायते यत् यस्माद्
ब्राह्मणानीति संज्ञा पदमितिहासादीनां संज्ञेति । तद्यथा ।
ब्राह्मणान्येवेतिहासान् जानीयात् पुराणानि कल्पान् गाथा ना
राशंसीरिति ॥

भाषार्थ

और इस हेतु से ब्राह्मण ग्रन्थों का ही इतिहासादि नाम जानना चा
हिये श्रीमद्भागवतादि का नहीं प्र० जहां २ ब्राह्मण और सूत्र ग्र
न्थों में (यद्ब्राह्मण०) इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा, नाराशंसी,
इत्यादि वचन देखने में आते हैं तथा अथर्व वेद में भी इतिहास
पुराणादि नामों का लेख है इस हेतु से ब्राह्मण ग्रन्थों से भिन्न ब्र
ह्मवैवर्त श्रीमद्भागवत महाभारतादि का ग्रहण इतिहासपुर
राणादि नामों से क्यों नहीं करते हो उ० इनके ग्रहण में कोई भी
प्रमाण नहीं है क्योंकि उनमें मतों के परस्पर बिरोध और लड़ा
ई आदि की असंभव मिथ्या कथा अपने २ मत के अनुसार लोगों
ने लिख रक्खी हैं इस से इतिहास और पुराणादि नामों में इनका
ग्रहण करना किसी मनुष्य को उचित नहीं जो ब्राह्मण ग्रन्थों
में (देवासुराः संयत्ता आसन्) अर्थात् देव विद्वान् और असुर

पूर्व ये दोनों युद्ध करने को तत्पर हुए थे इत्यादि कथाओं का नाम इतिहास है (सदेवसो०) अर्थात् जिसमें जगत् की उत्पत्ति आदि का वर्णन है उस ब्राह्मण भाग का नाम पुराण है (इन्द्र वोर्जेत्वोतिवक्ष्ये०) जो वेद मंत्रों के अर्थ अर्थात् जिनमें द्रव्यों के सामर्थ्य का कथन किया है उसका नाम कल्प है इसी प्रकार जैसे शत पथ ब्राह्मण में याज्ञवल्क्य जनक गार्गी मैत्रेयी आदि की कथाओं का नाम गाथा है और जिनमें नर अर्थात् मनुष्य लोगों ने ईश्वर धर्म आदि पदार्थ विद्याओं और मनुष्यों की प्रशंसा की है उनको नाराशंसी कहते हैं (ब्राह्मणानीतिहासान्०) इस वचन में ब्राह्मणानि संज्ञि और इतिहासादि संज्ञा है अर्थात् ब्राह्मण ग्रंथों का नाम इतिहास पुराण कल्प गाथा और नाराशंसी है सो ब्राह्मण और निरुक्तादि ग्रन्थों में जो २ जैसी २ कथा लिखी हैं उन्हीं का इतिहासादि से ग्रहण करना चाहिये अन्य का नहीं॥

भाष्यम्

अन्यदप्यत्र प्रमाणमस्ति न्यायदर्शन भाष्ये। वाक्यविभागस्य चार्थ ग्रहणात्। १। अ०२ आ०२ सू०६०। अस्योपरि वात्स्यायन भाष्यम्। प्रमाणं शब्दो यथा लोके विभाग श्च ब्राह्मण वाक्यानां त्रिविधः अयमभिप्रायः। ब्राह्मणग्रंथ शब्दा लौकिका एव न वैदिका इति। तेषां त्रिविधो विभागो लक्ष्यते। सू० विध्यर्थ वादानुवादव चन विनियोगात्॥२॥अ०२ आ०२ सू०६१॥ अस्योप० वा०भा० । त्रिधा खलु ब्राह्मण वाक्यानि विनि युक्तानि विधि वचनान्यर्थ वाद वचनान्यनु वचनानीति तत्र। सू० विधिर्विधायकः॥३॥अ० २ आ०२ सू०६२॥ अस्योप० वा० भा०। यद्वाक्यं विधायकम् चो०

दर्कं सविधिः। विधिस्तु नियोगोऽनुज्ञा वा यथाग्निहोत्रं जुहुय स्वर्ग काम इत्यादि। ब्राह्मण वाक्यानामिति शेषः। सू॰ स्तुतिर्निन्दा पर कृतिः पुरा कल्प इत्यर्थ वादः ॥४॥ अ॰२ आ॰१ सू॰ ६३। अस्योप॰ वा॰ भा॰ विधेः फल वाद लक्षणा या प्रशंसा सा स्तुति संप्रत्ययार्था स्तूयमानं श्रद्दधीतेति प्रवर्त्तिका च फलश्रवणात्प्रवर्त्तते सर्वजिता वै देवाः सर्वमजयन्सर्वस्याप्त्यै सर्वस्य जित्यै सर्वस्यैतेनाप्नोति सर्वं जयतीत्येवमादि। अनिष्ट फल वादो निन्दानर्थ नार्थं निन्दितं न समाचरेदिति। स एष वा प्रथमो यज्ञो यज्ञानां यज्ज्योतिष्टोमो य एतेनानिष्ट्वाऽन्येन यजते गर्त्तपत्यमेव तज्जीर्यते वा इत्येवमादि। अन्यकर्त्तृ कस्य व्याहतस्य विधेर्वादः पर कृतिः। हुत्वा वपामेवाग्रेऽभिघारयन्ति। अथ पृषदाज्यं तदु ह चरकाध्वर्यवः पृषदाज्यमेवाग्रेऽभिघारयन्ति। अग्नेः प्राणाः पृषदाज्यं स्तोममित्येवमभिदधतीत्येवमादि। ऐतिह्य समाचरितो विधिः पुरा कल्प इति। तस्माद्वा एतेन ब्राह्मणा हविः पवमानं साम स्तोमं समस्तौषन् योनेर्यज्ञं प्रतनवामह इत्येवमादि। कथं। पर कृति पुराकल्पो अर्थ वाद इति। स्तुति निन्दा वाक्येनाभि संबन्धाद्विध्याश्रयस्य कस्य कस्यचिदर्थस्य द्योतनादर्थ वाद इति॥

भाषार्थ

ब्राह्मण ग्रन्थों की इतिहासादि संज्ञा होने में और भी प्रमाण है जैसे लोक में तीन प्रकार के बचन होते हैं वैसे ब्राह्मण ग्रंथों में भी हैं उन में से एक विधिवाक्य है (देवदत्तो ग्रामम गच्छतु सुखार्थम्। सुख के लिये देवदत्त ग्राम को जाय इसी प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों में भी हैं (अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्ग कामः) जिसको सुख

की इच्छा हो वह अग्निहोत्रादि यज्ञों को करे दूसरा अर्थ वाद है जो कि चार प्रकार का होता है एक स्तुति अर्थात् पदार्थों के गुणों का प्रकाश करना जिस्से मनुष्यों की श्रद्धा उत्तम काम करने और गुणों के ग्रहण में ही हो दूसरी निन्दा अर्थात् बुरे काम करने में दोषों का दिखलाना जिस्से उनको कोई न करे तीसरे (परकृतिः) जैसे इस चोर ने बुरा काम किया इस्से उसको दंड मिला और साहूकार ने अच्छा काम किया इस्से उसकी प्रतिष्ठा और उन्नति हुई चौथा (पुराकल्प) अर्थात् जो बात पहिले हो चुकी हो जैसे जनक की सभा में याज्ञवल्क्य गार्गी शाकल्य आदि ने इकट्ठे होके आपस में प्रश्नोत्तर रीति से संवाद किया था इत्यादि इतिहासों को पुराकल्प कहते हैं ॥

भाष्यम्

सू० विधि विहितस्यानु वचन मनुवादः ॥५॥ अ० २ आ० २ सू० ६४ ॥ अस्योप० वा० भा० । विध्यनु वचनं चानुवादो विहितानु वचनं च पूर्वः शब्दानुवादोऽ परोऽर्थानुवादः । सू० न चतुष्ट्वमैतिह्यार्थापत्ति संभवाभाव प्रामाण्यात् ॥६॥ अ० २ आ० २ सू० ॥१॥ अस्योप० वा० भा० । न चत्वार्य्येव प्रमाणानि किंतर्हि । ऐतिह्यमर्थापत्तिः संभवोऽभाव इत्येतान्यपि प्रमाणानि । इति होचुरित्य निर्दिष्ट प्रवक्तृकं प्रवादपारं पर्य्यमैतिह्यम् । अनेन प्रमाणेना पीतिहासादि नामभिर्ब्राह्मणान्येव गृह्यन्ते नान्यदिति ॥

भाषार्थ

इसका तीसरा भाग अनुवाद है अर्थात् जिसका पूर्व विधान करके उसी का स्मरण और कथन करना सो भी दो प्रकार का है एक शब्द

का और दूसरा अर्थ का जैसे वह विद्या को पढ़े यह शब्दानुवाद है विद्या पढ़ने से ही ज्ञान होता है इस को अर्थानुवाद कहते हैं जिसकी प्रतिज्ञा उसी में हेतु उदाहरण उपनय और निगमन को घटाना हो जैसे परमेश्वर नित्य है यह प्रतिज्ञा है विनाश रहित होने से यह हेतु है आकाश के समान है इसको उदाहरण कहते हैं जैसा आकाश नित्य है वैसा परमेश्वर भी है इसको उपनय कहते हैं और इन चारों का क्रम से उच्चारण करके पक्ष में यथावत् योजना करने को निगमन कहते हैं जैसे परमेश्वर नित्य है विनाश रहित होने से आकाश के समान जैसा आकाश नित्य है वैसा परमेश्वर भी है इससे इसमें समझ लेना चाहिये कि जिस शब्द और अर्थ का दूसरी बार उच्चारण और विचार हो इस को अनुवाद कहते हैं सो ब्राह्मण पुस्तकों में यथावत् लिखा है इस हेतु से भी ब्राह्मण पुस्तकों का नाम इतिहासादि जानना चाहिये क्योंकि इनमें इतिहास पुराण कल्प गाथा और नाराशंसी ये पांच प्रकार की कथा सब ठीक २ लिखी हैं और भागवतादि को इतिहासादि नहीं जानना चाहिये क्योंकि उनमें मिथ्या कथा बहुत सी लिखी हैं ॥

भाष्यम्

अन्यच्च। ब्राह्मणानि तु वेदव्याख्यानान्येव सन्ति नैव वेदाख्यानीति। कुतः। इषे त्वोर्जे त्वेति शा॰ कां॰ १ अ॰ ७। इत्यादीनि मंत्रप्रतीकानि धृत्वा ब्राह्मणेषु वेदानां व्याख्यानकरणात् ॥

भाषार्थ

ब्राह्मण ग्रंथों को वेदों में गणना नहीं हो सकती क्योंकि (इषे त्वोर्जे त्वेति)

ज्ञान कराना चाहिये इस प्रकार से कहा हो तो भी मानने के योग्य नहीं हो सक्ता क्योंकि इसमें अन्य ऋषियों की एक भी साक्षी नहीं है इस से यह सिद्ध हुआ कि ब्रह्म नाम ब्राह्मण का है सो ब्रह्मादि जो वेदों के जानने वाले महर्षि लोग थे उन्हीं के बनाये हुए ऐतरेय शतपथ आदि वेदों के व्याख्यान हैं इसी कारण से उनके किये ग्रन्थों का नाम ब्राह्मण हुआ है इस्से निश्चय हुआ कि मंत्र भाग की ही वेद संज्ञा है ब्राह्मण ग्रंथों की नहीं ॥

भाष्यम्

किंचभोः। ब्राह्मणग्रंथानामपि वेदवत्प्रामाण्यं कर्त्तव्य माहोस्वि न्नेति। अत्र ब्रूमः। नैतेषां वेदवत्प्रामाण्यं कर्त्तुं योग्य मस्ति। कुत ईश्वरोक्ताभावात्तदनुकूलतयैव प्रमाणार्हत्वाच्चेति। परन्तु सन्ति मानि पातः प्रमाण योग्यान्येवेति ॥

भाषार्थ

प्र० हम यह पूछते हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थों का भी वेदों के समान प्रमाण करना उचित है वा नहीं उ० ब्राह्मण ग्रंथों का प्रमाण वेदों के तुल्य नहीं हो सकता क्योंकि वे ईश्वरोक्त नहीं है परन्तु वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण के योग्य तो हैं ॥

इति वेद संज्ञा विचारः ॥

इयाया आनन्दो विलसति पुरे ब्रह्मविदितः सच्चन्द्य स्वामी नयम ति मुदा सत्यनिलया ॥ इयं ख्यातिर्य स्यप्रथित सुगुणा हीश शर णा स्त्यमना ऽ यंग्रन्थो रचित इति बोद्धव्य मनघाः ॥१॥ यह श्लोक स्वयं स्वामी जी महाराज ने ग्रन्थ निर्माण बोधक बनाया है ॥

अवदेखिये

आर्य्यगण। भरतखंड मेलेकर यूरुप व आमेरिका तक इस ऋग्वेदादि भाष्य और भूमिका के लेने व देखने और सहायता करने वाले एक से एक विशेष गुणज्ञ गुणवान॰ विद्वान् बुद्धिमान् और धार्मिक राजे महाराजे और बड़े २ राज्याधिकारी आदि हज़ारों सत्पात्र और सत्पुरुष हैं उनमें से थोड़ों का नाम यहां नीचे इस लिये लिखा जाता है कि इस ग्रंथ के अवलोकन करने वालों को इन्हें देख ऐसों की बुद्धि में भ्रम डालने* वालों की योग्यता भली भांति प्रकाशित होजावे॥

ग्राहकाभिधान सूचीपत्रम्

नंबर अनुक्रम	नंबर पृष्ठ भूमिका	नाम	पता
१	१	राजमान्य राजे श्रीगोपालरावहरीदेशमुख	जज दक्षिण नाशिक डिस्ट्रिक्ट बंबई हाता
२	४६	कृष्णरावविठ्ठलविंचरकर	जज दक्षिण सितारा
३	४७२	महादेव गोविंद रानड़े	जज पूना बम्बई हाता
४	२५	रामचन्द्र गोपालदेशमुख	जज गायकवाड़ गुजरात दक्षिण बड़ौदा
५	४०१	लालशंकर उमाशंकर	सब आर्डिनेंट जज पंडरपुरगिरगांव वैकरोड बम्बई हाता
६	५०	मायालाल मथुरा दास	डिप्टी कलक्टर भड़ौंच गुजरात
७	१६०	रा॰रा॰भास्कर बालकृष्ण निमये	डिप्टी इन्स्पेक्टर नाशिक

* जैसे राजा शिवप्रसाद आदि

३८	४५८	डाक्टर हरि प्रसाद	सिविल सर्जन माधोपुर
३९	२७५	लाला मूलराज एम.ए.	लाहौर
४०	४८०.	कार स्टीफ़न साहब बहादुर	ज्यूडीशयेल असिस्टेंट लुधियाना
४१	४८८	लाला मुंशीलाल एम.ए.	हेड मास्टर गवर्नमेंट स्कूल होशियार पुर
४२	४९०	लाला मोहनलाल बी.ए.	गवर्नमेंट कालेज लाहौर पंजाब
४३	४९३	लाला श्रीराम एम. ए.	हेड मास्टर नार्मल स्कूल लाहौर
४४	८०	कन्हैयालाल कलस्वधारी	लुधियाना पंजाब
४५	२५२	लाला बालमुकुंद	एसिस्टेंट इनजिनियर सियालकोट
४६	१८७	डायरेक्टर	क्यूरेटर ग. सेन्ट्रल डिपो लाहौर
४७	५१७	लाला लक्ष्मीराम	असिस्टेंट इंजिनियर ज़ि. गुजरानवाला वज़ीराबाद
४८	४३६	डाक्टर जस्वन्त राय	असिस्टेण्ट सर्जन शफ़ाख़ाने मुल्तान
४९	५२७	लाला ईश्वरीदयाल	सिविल इनजिनियर लाहौर
५०	५६०	सालार मल	असिस्टेंट इनजिनियर मुल्तान
५१	५५५	राय राम सहाय साहब	एक्स्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर फ़ीरोज़पुर
५२	५५०	सूबेदार मेजर गुलाब खां हुवे	सरदार बहादुर ११ पलटन रावलपिंडी
५३	२६१	मेजर डबल्यू आर एम. हाल राय बहा. बहादुर	डायरेक्टर सरिश्ते तालीम पंजाब
५४	८२	सर्दार छत्तर सिंह	एम. यू एफ. चीफ़ आफ़ भदौड़ लुधियाना
५५	२१६	सर्दार जगत सिंह	मोतसिंह महाराज जींद हाजिरबाश मुहकी लेफ़्टिनेंट गवर्नर पंजाब

५६	२१९	राजा रघुवीर सिंह	जींद ब्राया अंबाला
५७	२१७	लाला देवी सिंह	मोतमिद महाराजा नाभा हाज़िर बाश मुहक्में लेफिनेंट गवर्नर पंजाब
५८	२२३	दीवान रामजस	दीवान महाराजा कपूरथला पंजाब
५९	२५६	बाबू शारदा प्रसाद भट्टाचार्य्य	पबलिक वर्क्स डिपार्टमेंट लाहोर
६०	३३३	पंडित भागराम	एक्स्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर अजमेर
६१	१८	मुन्शी इंद्रमणि	नामी रईस मुरादाबाद
६२	८९	पंडित मोहन लाल	हेड मास्टर गवर्नमेंट स्कूल मेरठ
६३	११७	पंडित काशी नरायण	मुनसिफ़ अलीगढ़
६४	३४	बाबू नवीन चंद्रराय	पेमास्टर स्टेट रेलवे [illegible]
६५	७१	पंडित सुंदर लाल	पोस्ट मास्टर जनरल्स आफ़िस इलाहाबाद
६६	४४१	राय देवी प्रसाद	डिप्टी कलक्टर बंदोबस्त मुरादाबाद हाल ग़ाज़ीपुर
६७	७७	राजा जयकृष्णदास	डिप्टी मेजिस्ट्रेट बिजनौर
६८	३७६	डाक्टर हरि प्रसाद	सिविल सरजन जगाधरी
६९	४२७	राय बद्रीदास	सब कलेक्टर बिजनौर
७०	२४६	द्वारिका प्रसाद	सरिश्तेदार कलेक्टर आफ़िस मुज़फ़्फ़र नगर
७१	५१९	पंडित गोपालराव हरी रईस झांसी	वज़ीटर सरिश्ते तालीम ज़िला फ़र्रुख़ाबाद
७२	२४७	बाबू डाल चंद	हेड मास्टर ज़िला स्कूल मुज़फ़्फ़र नगर

७३	४२	पांडे वैणीमाधव शास्त्री	ग्राम नदुई ज़िला एटा
७४	५७२	बाबू राम नाथ	डिप्टी कमिश्नर आफ़िस प्रतापगढ़ अवध
७५	५४	मुंशी हनूमान प्रसाद	राजेन्द्र राजे इन्द्र विक्रम शाह बहादुर रियासत खैरी गढ़ अवध
७६	३७४	बाबू वंशीलाल सिंह	वकील हाईकोर्ट खैरी अवध
७७	४५०	बाबू जगमोहन सिंह	इन्स्पेक्टर अवध रुहेलखंड रेलवे बनारस
७८	२२५	कृष्णलाल मिश्र	वकील हाईकोर्ट प्रतापगढ़ अवध
७९	७६	पंडित लक्ष्मीनारायण दुबे	मुलाज़िम महाराज बलरामपुर लखनऊ
८०	५७७	राम दयाल राय बहादुर	मुन्सिफ़ ताजपुर दरभंगा
८१	४९४	बाबू जयकृष्ण मुकरजी	इंजिनियर चीफ़स आफ़िस एन०बी० रेलवे दार्जलिंग
८२	३२	बाबू केशव चंद्र सेन	अध्यक्ष ब्रह्म समाज कलकत्ता
८३	५७	बाबू द्विजेंद्रनाथ ठाकुर	आदि ब्रह्म समाज कलकत्ता
८४	६४	बाबू महेन्द्र सरकार	डाक्टर कलकत्ता
८५	५	जय प्रकाश	दीवान राजा डुमराव बंगाल ह्याथी
८६	४०२	प्रोफेसर मेक्स मूलर	आक्सफोर्ड इंगलेंड
८७	४०३	प्रोफेसर मोनियर विलियमस	आक्सफोर्ड इंगलेंड

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती दिग्विजयार्कीय द्विलीयांके वेद सहायदिचारो नाम तृतीयो मयूखः ॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

आर्य्यगण पिछले तीन अध्यायोंके द्वारा आपको श्रीजी महाराज रचित वेद भाष्य भूमिका का नमूना दिखा चुका कहिये किस प्रकार प्रबल आप्त प्रमाणों से वेदों का माहात्म्य और उनका नित्यत्वादि प्रकाशित किया है धन्य है उनकी इस लोकोत्तर विद्या और परिश्रम को श्री जगदीश्वर उनको पूर्णायु करे जिससे सृष्टि सुधरे॥

अब आपको थोड़ा चमत्कार श्रीजी रचित भाष्योंका और दिखाता हूं यद्यपि वह आरम्भ मात्र ही यहां लिखा गया है तथापि बहुलाभ दायक होगा, और इतने ही से समस्त ग्रन्थ की कैफियत और दोनों वेदों का आशय और विस्तार इस ग्रन्थ के अवलोकन करने वालों पर भली भांति प्रकाशित हो जावेगा इतना ही नहीं किन्तु और भी बहुत सी ऐसी आवश्यक बातें विदित होंगी जितनी कि वैदिक मत वालों को जानना परमावश्यक हैं॥

अब देखना चाहिये कि जिस ग्रन्थ के एक मंत्रकी व्याख्या पढ़ने से इतना लाभ है तो समस्त के देखने सुनने और पढ़ने से कितना लाभ न होगा॥

श्रीमत्

अथ ऋग्वेद भाष्यारम्भः

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ॥

यद्भद्रन्तन्न आसुव ॥ ऋ०५।८२।५ ॥

विद्यानन्दं सम्वति चतुर्वेद समस्तावनाया संप्रदर्थो धां निगम निलयं संप्रणाम्याय कुर्वे। वेदव्यद्वैः विधु युत सरे मार्गशुक्ले ६ भौमेऋग्वेद स्याखिलेगुणा गुणा ज्ञानदातुर्हि भाष्यम् ॥१॥

ऋग्वेदीयाध्यायवर्गसङ्ख्या

प्रथमाष्टके		द्वितीयाष्टके		तृतीयाष्टके		चतुर्थाष्टके		पंचमाष्टके		षष्ठाष्टके		सप्तमाष्टके		अष्टमाष्टके	
अध्याय	वर्ग	अध्याय	वर्ग	अध्याय	वर्ग	अध्याय	वर्ग	अध्याय	वर्ग	अध्याय	वर्ग	अध्याय	वर्ग	अध्याय	वर्ग
१	३७	१	२६	१	२८	१	३३	१	२७	१	४०	१	४१	१	३०
२	३८	२	२७	२	२९	२	२८	२	३०	२	५०	२	३३	२	२४
३	३५	३	३६	३	३१	३	३३	३	३०	३	४६	३	२६	३	२८
४	२९	४	२९	४	२५	४	३६	४	३०	४	५४	४	२८	४	३०
५	३१	५	२९	५	२६	५	३०	५	२३	५	३८	५	३३	५	२७
६	३२	६	३२	६	३०	६	२५	६	२५	६	३८	६	२८	६	२७
७	३७	७	३५	७	२६	७	३५	७	३३	७	३९	७	३०	७	३०
८	२६	८	२७	८	२६	८	३२	८	३६	८	३३	८	२९	८	४८
योग	२६५	योग	२२१	योग	२२५	योग	२५०	योग	२३८	योग	३३१	योग	२४८	योग	२४५

आगे मैं सब प्रकार से विद्या के आनन्द को देने वाली चारों वेदों की भूमिका को समाप्त और जगदीश्वर को अच्छे प्रकार प्रणाम के ... संवत् १९३४ मार्गशुक्ल ६ भौमवार के दिन संपूर्ण ज्ञान के

देने वाले ऋग्वेद के भाष्य का आरम्भ करता हूं ॥२॥

(ऋग्भिः स्तुवन्ति) इस ऋग्वेद से सब पदार्थों की स्तुति होती है अर्थात ईश्वर ने जिसमें सब पदार्थों के गुणों का प्रकाश किया है इस + लिये विद्वान् लोगों को चाहिये कि ऋग्वेद को प्रथम पढ़ के उन मंत्रों से ईश्वर से लेके पृथ्वी पर्य्यन्त सब पदार्थों को यथावत् जान के संसार में उपकार के लिये प्रयत्न करें ॥

ऋग्वेद शब्द का अर्थ यह है कि जिस से सब पदार्थों के गुणों और स्वभावों का वर्णन किया जाय वह ऋक् और वेद अर्थात् जो यह सत्य २ ज्ञान का हेतु है इन दो शब्दों से ऋग्वेद शब्द बनता है (अग्निमीळे) यहां से लेकर (यथावः सुसहासति) इस अन्त के मंत्र पर्य्यन्त ऋग्वेद में आठ अष्टक और प्रत्येक अष्टक में आठ २ अध्याय हैं सब अध्याय मिलके चौसठ होते हैं ॥ प्रत्येक अध्याय के वर्गों की संख्या कोष्ठों में लिखे अनुसार जानो और आठों अष्टक के सब वर्ग मिलकर २०२४ दो हज़ार चौबीस होते हैं तथा इसमें दस मण्डल हैं उनके मंत्र आदि की संख्या का विस्तार आगे लिखे कोष्ठ के अनुसार है ॥

प्रति मण्डलान्तर्गत अनुवाकादि संख्या

मण्डलसंख्या	अनुवाक संख्या	सूक्त संख्या	मंत्र संख्या
प्रथम	२४	१९१	१९७६
द्वितीय	४	४३	४२९
तृतीय	५	६२	६१७
चतुर्थ	५	५८	५८९
पंचम	६	८७	७२७
षष्ठ	६	७५	७६५
सप्तम	६	१०४	८४१
अष्टम	१०	१०३	१७२६
नवम	७	११४	११०८
दशम	१२	१९१	१७५४

इन दसों मण्डलों में ८५ पच्चासी अनुवाक और एक हज़ार अट्ठाईस सूक्त और दस हज़ार पांच सौ बत्तीस मंत्र हैं॥ सब सज्जनों को उचित है कि इस बात को ध्यान में धरलें जिससे किसी प्रकार का कभी गड़बड़ न हो॥

अथादिमस्य नवर्चस्य सूक्तस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः

तत्राद्य मन्त्रेऽग्निशब्देनेश्वरेणात्म भौतिका वर्थावुपदिश्येते

यहां प्रथम मंत्र में अग्नि शब्द करके ईश्वर ने अपना और भौतिक अर्थ का उपदेश किया है॥

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥१॥ यह प्रथम मंत्र हुआ

अग्निम्। ईळे। पुरःऽहितम्। यज्ञस्य। देवम्। ऋत्विजम्। होतारम्। रत्नऽधातमम्॥१॥ ये प्रथम मंत्र के पद हुए

पदार्थः-(अग्निम्) परमेश्वरं भौतिकं वा। इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्॥ एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥१॥ ऋ०१।१६४।४६ अ-नेनैकस्य सतः

परब्रह्मण इन्द्रादीनि बहुधा नामानि सन्तीति वेदितव्यम्॥

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः॥

तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥२॥ य०३२।१। यत्स-च्चिदानन्दादि लक्षणं ब्रह्म तदेवात्राग्न्यादि नाम वाच्यमिति बो-ध्यम्॥ ब्रह्मह्यग्निः। श०१।४।२।११ आत्मा वा अग्निः श० ४।२।३।२ अत्राग्निर्ब्रह्मात्मनोर्वाचकोऽस्ति।

अयं वा अग्निः प्रजाश्च प्रजापतिश्च॥ श०९।१।२।४२।

अत्र प्रजा शब्देन भौतिकः प्रजापति शब्देनेश्वरश्चाग्निर्ग्राह्यः।

अग्निर्वै देवानां व्रतपतिः। एतद्धि वै देवा व्रतं चरन्ति यत्सत्यम् । श०१।१।१।२५।

सत्याचारनियमपालनं व्रतं तत्पतिरीश्वरः। त्रिभिः पवित्रैरपुपो-द्ध्यऽर्कं हृदा मतिं ज्योतिरनु प्रजानन्॥ वर्षिष्ठं रत्नमकृत स्व-धाभिरादिद्द्यावापृथिवी पर्य्यपश्यत्॥२॥ ऋ०३।२।६।८॥

अत्राग्निशब्दस्यानुवृत्तेः

प्रजानन्निति ज्ञानवत्त्वात् पर्य्यपश्यदिति सर्वज्ञत्वादीश्वरो ग्राह्यः।

यास्क मुनिरस्यो भयार्थं कारणं याग्नि शब्द पुरः सरमेतन्मंत्रमेवं व्याचष्टे ॥ अग्निः कस्मादग्रणीर्भवत्यग्रं यज्ञेषु प्रणीयते ऽङ्गं नयति सन्नममानोऽक्नोपनो भवतीति स्थौलाष्ठीविर्न क्नोपयति न स्नेहयति त्रिभ्य आख्यातेभ्यो जायत इति शाकपूणिरिता दक्ता दग्धाद्वा नीतात्स खल्वेते रकारमादत्ते गकारमनक्तेर्वा दहते र्वा नीः परस्तस्यै वा भवतीति ॥ अग्निमीळेऽग्निं याचामीळिरध्येषणा कर्मा वा दे वो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वायो देवः सा देवता । होतारं ह्वातारं जुहोतेर्होतेत्यौर्णवाभो रत्नधातमं रमणीयानां धनानां दातृतमम् ॥ निरु०७ १४।१५। अग्रणीः सर्वोत्तमः सर्वेषु यज्ञेषु पूर्वमीश्वरस्यैव प्रतिपादनात्तस्यात्र ग्रहणम् । दग्धादिनि विशेषणाद्भौतिकस्यापि च । प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि । रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम् ॥१॥ एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ॥ इन्द्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥२॥ मनु० अ०१२। श्लो०१२२।१२३। अत्राप्यग्न्यादीनि परमेश्वरस्य नामानि सन्तीति ॥ ईळे अग्निं विपश्चितं गिरा यज्ञस्य साधनम् ॥ श्रुष्टीवानं धितावानम् ॥४॥ ऋ०३।२७।२। द्विपश्चित. मीळे इति विशेषणादग्निशब्दे नात्रेश्वरो ग्रहीतः ऽनन्त विद्यावत्त्वाच्चेतनस्वरूपत्वाच्च ।

अथ केवलं भौतिकार्थ ग्रहणाय प्रमाणानि । यदश्वं तं पुरस्तादुदश्रयंस्तस्याभयेनाष्ट्रे निवातेऽग्निरजायत तस्मादग्निमन्थिष्यन्त्स्यात्तदश्वमानेतवै ब्रूयात् । सपूर्वेणोपतिष्ठते वज्रमेवैतदुच्छ्रयंति तस्याभयेनाष्ट्रे निवातेऽग्निर्जायते। श०२।१।४।१६।

वृषो अग्निः। अश्वो ह वा एष भूत्वा देवेभ्यो यज्ञं वहति। श०१।३।
३।२९।३०। वृषवद्यानानां वोढृत्वाद् वृषोऽग्निः॥ तथाऽयमग्नि
राशुगमयितृत्वेनाश्वो भूत्वा कलायन्त्रैः प्रेरितः सन्देवेभ्यो विद्व
द्भ्यः शिल्पविद्याविद्भ्यो मनुष्येभ्यो विमानादियानसाधनसं-
गतं यानं वहति प्रापयतीति। तूर्णिर्हव्यवाडिति। श०१।३।४।१२।
अयमग्निर्हव्यानां यानानां प्रापकत्वेन शीघ्रतया गमकत्वाद्धव्य
वाट् तूर्णिश्चेति। अग्निर्वै योनिर्यज्ञस्य। श०१।४।३।११। इत्या
द्यनेकप्रमाणैरश्वनाम्ना भौतिकोऽग्निर्वाऽत्र गृह्यते आशुगमनहे
तुत्वादश्वोऽग्निर्विज्ञेयः। वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववा
हनः॥ तं हविष्मन्त ईळते॥५॥ ऋ०३।२७।१४। यदा शिल्पि
भिरयमग्निर्यन्त्रकलाभिर्यानेषु प्रदीप्यते तदा देववाहनो देवान्
यानस्थान् विदुषः शीघ्रं देशान्तरेऽश्व इव वृष इव च प्रापयति
ते हविष्मन्तो मनुष्या वेगादिगुणवन्तमश्वमग्निमीळते कार्य्या
र्थमधीच्छन्तीति वेद्यम्॥ (ईळे) स्तुवे याचेऽधीच्छामि प्रेर
यामि वा (पुरोहितं) पुरस्तात्सर्वं जगद्दधाति छेदनधारणाकर्ष
णादिगुणं प्रापितं॥ पुरोहितः पुर एनं दधति होत्रायवृतः कृपा
यमाणोऽन्वध्यायत्। निरु०२।१२। (यज्ञस्य) इज्यतेऽसौ यज्ञ
स्तस्य महिम्नः कर्मणो विदुषां सत्कारस्य संगतस्य सत्संगत्यो
त्पन्नस्य विद्यादिदानस्य शिल्पक्रियोत्पाद्यस्य वा। यज्ञः कस्मा
त्प्रख्यातं यजतिकर्मेति नैरुक्ता याच्ञो भवतीति वा यजुरुन्नो भव
तीति वा बहुकृष्णाजिन इत्यौपमन्यवो यजूंष्येनं नयन्तीति वा।
निरु०३।१९। (देवं) दातारं हर्षकरं विजेतारं द्योतकं वा (ऋ
त्विजं) ऋतौ ऋतौ प्रत्युत्पत्तिकालं संसारं संगतं य-

जति करोति तथा च शिल्पसाधनानि संगमयति सर्वेषु क्रतुषु यजनीयस्तं ऋत्विग्दधृग॰ अ॰ ३।२।५९ अनेन कर्तरि निपातनम् तथा कृतो बहुलमिति कर्मणि वा। (होतारं) दातार मादातारं वा (रत्नधातमम्) रमणीयानि पृथिव्यादीनि सुवर्णादीनि च रत्नानि दधाति धापयतीति रत्नधा अतिशयेन रत्ना धारति रत्नधातमस्तम्॥

अन्वयः

अहं यज्ञस्य पुरोहित मृत्विजं होतारं रत्नधातमं देव मग्नि मीळे॥

यह प्रथम मंत्र का अन्वय हुआ

भावार्थः अत्र श्लेषालंकारेणोभयार्थ ग्रहणमस्ती तिबोध्यम्। इतोऽग्रे यत्र यत्र मन्त्र भूमिका या मुपदिश्यत इति क्रियापदं प्रयुज्यतेऽस्य सर्वत्र कर्त्तेश्वर एव बोध्यः। कुतः। वेदानां तेनैवोक्तत्वात् पितृवत्कृपायमाण ईश्वरः सर्व विद्या प्राप्तये सर्वजीव हितार्थं वेदोपदेशं चकार यथा पिताऽध्यापको वा स्व पुत्रं शिष्यं च प्रतित्वमेवं वदेवं कुरु सत्यं वद पितर माचार्यं च सेव स्वानृतं माकुर्वित्युपदिशति तथैवात्र बोध्यम्। वेदश्च सर्व जीव कल्याणार्थ माविर्भूतः। एव मर्थोऽ चोत्तम पुरुष प्रयोगः। वेदोपदेस्य परोपकारार्थ त्वात्। अत्राग्नि शब्देन परमार्थ व्यवहार विद्या सिद्धये परमेश्वर भौतिकौ द्वावर्थौ गृह्यते पुरा आर्यैर्योऽश्व विद्या नाम्ना शीघ्र गमन हेतुः शिल्पविद्या संपादिते ति श्रूयते साग्निविद्यैवासीत्। परमेश्वरस्य स्वयं प्रकाशत्व सर्व प्रकाश कत्वाभ्या मनन्त ज्ञान वत्त्वात्। भौतिकस्य रूपदाह प्रकाश वेग छेदनादि गुणवत्वाच्छिल्प

विद्यायां मुख्य हेतुत्वाच्च प्रथमं ग्रहणं कृतमस्तीति वेदितव्यम ॥१॥

पदार्थान्वय भाषा

(यज्ञस्य) हम लोग विद्वानों के सत्कार संगम महिमा और कर्म के (होतारं) देने तथा ग्रहण करने वाले (पुरोहितं) उत्पत्ति के समय से पहिले परमाणु आदि सृष्टि के धारण करने वाले और (ऋत्विजं) बारंबार उत्पत्ति के समय में स्थूल सृष्टि के रचने वाले तथा ऋतु ऋतु में उपासना करने योग्य (रत्नधातमम्) और निश्चय करके मनोहर पृथ्वी वा सुवर्ण आदि रत्नों के धारण करने वाले (देवं) देने तथा सब पदार्थों के प्रकाश करने वाले परमेश्वर की (ईळे) स्तुति करते हैं तथा उपकार के लिये (यज्ञस्य) हम लोग विद्यादि दान और शिल्प क्रियाओं से उत्पन्न करने योग्य पदार्थों के (होतारं) देने हारे तथा (पुरोहितं) उन पदार्थों के उत्पन्न करने के समय से पूर्व भी छेदन धारण और आकर्षण आदि गुणों के धारण करने वाले। (ऋत्विजं) शिल्पविद्यासाधनों के हेतु (रत्नधातमम्) अच्छे अच्छे सुवर्णादि रत्नों के धारण कराने तथा (देवं) युद्धादिकों में कला युक्त शस्त्रों से विजय कराने हारे भौतिक अग्नि की (ईळे) बार बार इच्छा करते हैं॥ यहां अग्नि शब्द के दो अर्थ करने में प्रमाण ये हैं कि (इन्द्रंमित्रं) इस ऋग्वेद के मंत्र से यह जाना जाता है कि एक सद्ब्रह्म के इन्द्र आदि अनेक नाम हैं तथा (तदेवाग्नि) इस यजुर्वेद के मंत्र से भी अग्नि आदि नामों करके सच्चिदानन्दादि लक्षण वाले ब्रह्म का जानना चाहिये (ब्रह्मह्य०) इत्यादि शतपथ ब्राह्मण के प्रमाणों से—

अग्नि शब्द ब्रह्म और आत्मा इन दो अर्थों का वाची है (अयंवा॰) इस प्रमाण में अग्नि शब्द से प्रजा शब्द करके भौतिक और प्रजा पति शब्द से ईश्वर का ग्रहण होता है (अग्ने॰) इस प्रमाण से सत्याचरण के नियमों का जो यथावत् पालन करना है सोही व्रत कहाता है और इस व्रत का पति परमेश्वर है (त्रिभिः पवित्रैः॰) इस ऋग्वेद के प्रमाण से ज्ञान वाले तथा सर्वज्ञ प्रकाश करने वाले विशेषण से अग्नि शब्द करके ईश्वर का ग्रहण होता है निरुक्त कार यास्क मुनि जी ने भी ईश्वर और भौतिक पक्षों को अग्नि शब्द की भिन्न भिन्न व्याख्या करके सिद्ध किया है सो संस्कृत में यथावत् देख लेना चाहिये परंतु सुगमता के लिये कुछ संक्षेप से यहां भी कहते हैं यास्कमुनिजी ने स्थौलाष्ठीवि ऋषि के मत से अग्नि शब्द का अग्रणी सबसे उत्तम अर्थ किया है अर्थात् जिसका सब यज्ञों में पहिले प्रतिपादन होता है वह सब से उत्तम है इस कारण अग्नि शब्द से ईश्वर तथा दाह गुण वाला भौतिक अग्नि इन दोही अर्थों का ग्रहण होता है (प्रशासितारं॰) (एतमे॰) मनुजी के इन दो श्लोकों में भी परमेश्वर के अग्नि आदि नाम प्रसिद्ध हैं (ईळे॰) इस ऋग्वेद के प्रमाण से भी उस अनंत विद्या वाले और चेतन स्वरूप आदि गुणों से युक्त परमेश्वर का ग्रहण होता है अब भौतिक अर्थ के ग्रहण करने में प्रमाण दिखलाते हैं (यदश्वं॰) इत्यादि शत पथ ब्राह्मण के प्रमाणों से अग्नि शब्द करके भौतिक अग्नि का ग्रहण होता है यह अग्नि बैल के समान सब देश देशांतरों में पहुंचाने वाला होने के कारण वृष और अश्व भी कहाता है क्योंकि वह कलाओं के द्वारा अश्व

अर्थात् शीघ्र चलाने वाला होकर शिल्पविद्या के जानने वाले विद्वान् लोगों के विमान आदि यानोंको वेग से वाहनोंके समान दूरदूर देशों में पहुंचाता है (तूर्णि: ०) इस प्रमाण से भी भौतिक अग्निका ग्रहण है क्योंकि वह उक्त शीघ्रता आदि हेतुओं से हव्यवाट् और तूर्णि भी कहाता है (अग्निर्वैयो०) इत्यादिक और भी अनेक प्रमाणों से अश्व नाम करके भौतिक अग्निका ग्रहण कियागया है (वृषो०) जबकि इस भौतिक अग्नि को शिल्पविद्या वाले विद्वान् लोग यंत्र कलाओं से सवारियों में प्रदीप्त करके युक्त करते हैं तब (देववाहन:) उन सवारियों में बैठे हुए विद्वान् लोगों को देशान्तर में बैलों वा घोड़ों के समान शीघ्र पहुंचाने वाला होता है, । हे मनुष्यो। तुम लोग (हविष्मंतं) वेगादि गुण वाले अश्व रूप अग्नि के गुणों को (ईडते) खोजो इस प्रमाण से भी भौतिक अग्नि का ग्रहण है ॥

भावार्थभाषा - इस मंत्र में श्लेषालंकार से दो अर्थों का ग्रहण होता है ।। पिता के समान कृपा करके परमेश्वर सब जीवों के हित और सब विद्याओं की प्राप्ति के लिये कल्प कल्प की आदि में वेद का उपदेश करता है जैसे पिता वा अध्यापक अपने शिष्य वा पुत्र को शिक्षा करता है कि तू ऐसा कर वा ऐसा वचन कह सत्य वचन बोल इत्यादि शिक्षा को सुनकर बालक वा शिष्य भी कहाता है कि सत्य बोलूंगा पिता और आचार्य्य की सेवा करूंगा झूठ न कहूंगा इस प्रकार जैसे परस्पर शिक्षक लोग शिष्य वा लड़कों को उपदेश करते हैं वैसे ही (अग्निमीळे०) इत्यादि वेद मंत्रों में भी जानना चाहिये क्योंकि ईश्वर ने वेद सब

जीवों के उत्तम सुखके लिये प्रगट किया है इसी (अग्नि मीळे०) वेद के उपदेश का परोपकार फल होने से इस मंत्र में ईडे यह उत्तम पुरुष का प्रयोगभी है (अग्निमीडे०) परमार्थ और व्यवहारविद्या की सिद्धि के लिये अग्नि शब्द करके परमेश्वर और भौतिक ये दोनों अर्थ लिये जाते हैं जो पहिले समय में आर्य लोगों ने अश्व विद्या के नाम से शीघ्र गमन का हेतु शिल्प विद्या उत्पन्न की थी वह अग्नि विद्या ही की उन्नती थी आपही आप प्रकाशमान सब का प्रकाश और अनंत ज्ञानवान् आदि हेतुओं से अग्नि शब्द करके परमेश्वर तथा रूप दाह प्रकाश वेग छेदन आदि गुण और शिल्पविद्या के मुख्य साधक आदि हेतुओं से प्रथम मंत्र में भौतिक अर्थ का ग्रहण कियाहै ॥१॥

आर्य्यगण इसीप्रकार परम प्रबल प्रमाणों सहित (अग्निः पूर्व) इस दूसरे आदि मंत्रों का भाष्य होता गयाहै ऐसाही स्वरूप यजुर्वेद भाष्य का भी जानो जितना कुछ कि उसका निदर्शन अवश्य है उतना आगे देख लीजिये ॥

इति ऋग्वेद भाष्यप्रदर्शनम्

अथ यजुर्वेदभाष्यारम्भः

योजीवेषु दधाति सर्व सुकृत ज्ञानं गुणैरीश्वर स्तं नत्वा क्रियते परोप कृतये सद्यः सुबोधायच ॥ ऋग्वेदस्य विधाय वै गुण गुणि ज्ञान प्रदातुर्वरं भाष्यं काम्य मथो क्रियामय यजुर्वेदस्य भाष्यं मया ॥१॥

चतुस्त्र्यङ्कैःस्वनिसहिते विक्रमसरे । शुभे पौषे मासे सितदल भविष्यो न्मित तिथौ ॥ गुरोर्वारे प्रातः प्रतिपद मतिष्टं सुविदुषां । प्रमाणै र्निर्बद्धं शतपथ निरुक्तादिभिरपि ॥२॥

विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥ य०३०।३।

भाषार्थ – अब यजुर्वेद के भाष्य का आरंभ किया जाता है जो निर्गुण गुण पुंज से देत सुकृत विज्ञान । प्रणत पाल जगदीश्वरहि करि प्रणाम तिहि ध्यान ॥१॥ ज्ञानदायि ऋग्वेद का भाष्याभीष्ट विधाय । पर उपकार विचारि करि शीघ्र सुबोध निधाय ॥२॥ शत पथ ब्राह्मण आदि पुनि निघंटु निरुक्त निहारि । यजुर्वेद जो क्रिया पर वनौं ताहि बिचारि ॥३॥ एक सहस्र नवशत अधिक विक्रम चौतीस ॥ पौष शुक्ल तेरस तिथौ दिन अर्धीश वागीश ॥४॥ विक्रम के संवत् १९३४ पौष सुदि १३ गुरुवार के दिन यजुर्वेद के भाष्य बनाने का आरंभ किया जाता है ॥ (विश्वानि०) इस मंत्र का अर्थ भूमिका में कर दिया है । ईश्वर ने ऋग्वेद में गुण और गुणी के विज्ञान के प्रकाश द्वारा सब पदार्थ प्रसिद्ध किये हैं उन मनुष्यों को पदार्थों से जिस २ प्रकार यथा योग्य उपकार लेने के

लिये क्रिया करनी चाहिये तथा उस क्रिया के जो जो अंग वा साधन हैं सो सो यजुर्वेद में प्रकाशित किये हैं क्योंकि जब तक क्रिया करने का दृढ़ ज्ञान न हो तब तक उस ज्ञान से श्रेष्ठ सुख कभी नहीं हो सक्ता और विज्ञान के ये हेतु हैं कि जो क्रिया प्रकाश अविद्या की निवृत्ति अधर्म में अप्रवृत्ति तथा धर्म और पुरुषार्थ का संयोग करना है। जो कर्म कांड है सो विज्ञान का निमित्त और जो विज्ञान कांड है सो क्रिया से फल देने वाला होता है कोई जीव ऐसा नहीं है कि जो मन प्राण वायु इंद्रिय और शरीर के चलाये बिना एक क्षण भी रह सके क्योंकि जीव अल्पज्ञ एक देश वर्त्ती चेतन है इसलिये ईश्वर ने ऋग्वेद के मंत्रों से सब पदार्थों के गुण गुणी का ज्ञान और यजुर्वेद के मंत्रों से सब क्रिया करनी प्रसिद्ध की है क्योंकि (ऋक्) और (यजुः) इन शब्दों का अर्थ भी यही है कि जिस से मनुष्य लोग ईश्वर से लेके पृथ्वी पर्य्यंत पदार्थों के ज्ञान से धार्मिक विद्वानों का संग सब शिल्प क्रिया सहित विद्याओं की सिद्धि श्रेष्ठ विद्या श्रेष्ठ गुण वा विद्या का दान यथा योग्य उक्त विद्या के व्यवहार से सर्वोपकार के अनुकूल द्रव्यादि पदार्थों का खर्च करें इसलिये इसका नाम यजुर्वेद है इसमें सब ४० अध्याय और सब अध्यायों के मिलकर १९७५ उन्नीस सौ पचहत्तर मंत्र हैं बस यहां से आगे मंत्रों का भाष्य पूर्व प्रदर्शित रीति से चला है॥ इति यजुर्वेद भाष्य निदर्शनम्॥

आर्य्यगण इसी प्रकार के साम और अथर्व वेदों के भी भाष्य बनेंगे कदाचित कहो कि इन सब वेदों के भाष्य प्रथम ही से बहुत से आचार्य बना गये हैं फिर इन नवीन भाष्य की क्या आवश्यकता

थी तो इसका उत्तर यह है कि निःसन्देह और अवश्य इन वेदों पर प्राचीन काल में ब्रह्मादिक ऋषि मुनियों ने जो व्याख्यान अर्थात् ऐतरेय शतपथ आदि नामों से ब्राह्मण ग्रन्थ बनाए हैं वे सब उत्तम और परतः प्रमाण करने के योग्य हैं परन्तु जब अर्थात् पुराण मत प्रवृत्त भये पीछे उवट रावण सायन महीधर आदि आचार्यों ने अपनी आधुनिक विद्या के अनुसार जो व्याख्यान अर्थात् वेद भाष्य रचे हैं वे अत्यन्त गर्हित और तुच्छ हैं क्योंकि उन्होंने अपनी तुच्छ बुद्धि और निंदित मत के अनुसार उनका ऐसा घृणित अर्थ लिखा है कि जिससे संसार में अनर्थ फैलगया है इन्हीं को देख ऐसेही अनर्थ कारक भाष्य यूरुप में प्रोफेसर विलसन और माक्समूलर आदि कई एक विद्वानों ने भी रचे हैं जिनकी प्रवृत्ति से सर्वत्र वेदों पर शंका होने लगीं और बहुतेरे लोग वेदों को आधुनिक ग्रन्थ बताने लगे इस महान् अंधकार के मिटानेके लियेपरम दयालु पूर्ण प्रतापी श्रीमान् स्वामीजी महाराज ने सनातन रीतिके अनुसार यह परम श्लाघ्य वेद भाष्य रचा है जिसके अभ्यास और अवलोकन से वेदों का यथा पूर्व महत्त्व प्रकाशित होता है इस प्रशंसनीय भाष्य पर भी कितनेही आधुनिक विद्वान पूर्वा पर विचार किये बिना शंका कर बैठे उन सबको श्रीजी महाराज ने अच्छे प्रकार शान्त किया है जो समाधान भ्रान्ति निवारण भ्रमोच्छेदन आदि पुस्तकों के द्वारा प्रकाशित किये गये हैं वे सर्वत्र मिलते हैं इसलिये उनको छोड़ कर आगे हम उस एक समाधान को उदाहरणार्थ यहां और लिखते हैं जो अगस्त सन् १८७७ ई॰ में काशी और कलकत्ता कालिजों के संस्कृतज्ञ विद्वान् प्रिन्सपिल आदि की

शंकाओं पर अंग्रेजी में लिखा गया था ॥

अथोदाहरणम्

सकल विद्वज्जन शिरोमणि श्रीमान् स्वामीजी महाराज कहते हैं कि मुझे वकीलहिन्द और यूनीवर्स्टीकालिज पंजाब के पत्रोंसे ज्ञात हुआ कि कई एक साहबों ने मद्रचित वेद भाष्य पर प्रतिकूल अनुमति दी है इसलिये मैं उन की शंकाओं का उत्तर क्रम से निवेदन करता हूं प्रथम उन शंकाओं का उत्तर है जो मिस्तर आर ग्रिफिथ एम॰ ए॰ प्रिन्सीपल बनारसकालिजने की है। पांच हजार वर्ष के लगभग से वेद विद्या जाती रही महाभारत से पहले इस देश में सब विद्या ठीक २ प्रचरित थीं परन्तु पीछे से पढ़ने पढ़ाने के ग्रन्थ और रीति बिलकुल बदलगई जबसे अब तक वही अशुद्ध प्रणाली प्रचरित है यद्यपि कहीं २ के लोग वेदादिक सत्य ग्रन्थों को कण्ठकर लेते हैं परन्तु उसके शब्दार्थ को कोई भी नहीं जानता न ऐसे कोई व्याकरणादिक ग्रन्थ अर्थ सहित पढ़ाये जाते हैं जिनसे वेदों का अर्थ हो सके आधुनिक जो महीधर आदि के बनाए हुए वेद भाष्य देखने में आते हैं वे महाभ्रष्ट और अंधकार के बढ़ाने वाले हैं उनके देखने वालोंको मद्रचित भाष्य ठीक समझमें नहीं आता मेरा भाष्य शुद्ध वेदार्थ बोधक और प्राचीन भाष्यों के ठीक अनुकूल है वह तभी समझ में आवेगा जब लोग प्राचीन भाष्यादिक ग्रन्थों की सहायता स्वीकार करेंगे मैंने प्रत्येक मंत्र का अर्थ सत्य प्रतीतहोने के अर्थ बहुत प्राचीन आप्त व्याख्यानकारों का प्रमाण बहुत-

स्पष्ट पत्रेवार लिख दिया है यदि ग्रिफ़िथ साहब ने प्राचीन भाष्य वा मेरे लिखे प्रमाणों और उदाहरणों को पढ़ा होता तो कभी उनकी ऐसी विरुद्ध सम्मति न होती जैसी कि उनने हाल में दी है उवट सायन महीधर रावण आदि के रचे इस भाष्य प्राचीन भाष्यों से समस्त स्थानों में विपरीत हैं केवल इन्हीं भाष्यों का उलथा अंग्रेज़ी में विलसन और माक्समूलर आदि प्रोफ़ेसरों ने किया है इस लिये मैं इनके भाष्यों को भी शुद्ध और न्याय कारी नहीं कह सकता इन्हीं ग्रन्थों के कारण ग्रिफ़िथ साहब आदि लोग भी संदेह मार्ग में पड़े हैं और मुझ को यह कह कर दूषित करते हैं कि स्वामी जी ने अर्थ पलट कर अपने प्रयोजन के सिद्ध्यार्थ दूसरे ही अर्थ नियत किये हैं परन्तु उनका यह तर्क सर्वथा निर्मूल है मैं ने सर्वत्र ऐतरेय और शतपथादि नामक ब्राह्मण ग्रन्थ और निरुक्त तथा पाणिनीय व्याकरणादिक सत्य ग्रन्थों का प्रमाण दे कर प्रत्येक मंत्र का सत्य २ अर्थ लिखा है यदि ग्रिफ़िथ साहिब उसको देखते तो कभी ऐसा न लिखते विचार करता हूं कि उनने मेरा भाष्य बिना ही देखे भाले अपनी मन मानी अनुमति प्रकाशित करदी है॥

मैं नहीं समझ सकता हूं कि क्यों ग्रिफ़िथ साहब मेरा वृथा भ्रम समझते हैं जब कि मेरे भाष्य के लेने वाले हज़ार से अधिक बड़े २ सत् पुरुष हैं और प्रत्यह नवीन जनों के निवेदन पत्र मेरी पुस्तक लेने के विषय में बराबर चले आते हैं- मेरे ग्राहकों में से बहुत से अच्छे २ संस्कृतज्ञ और बहुतेरे अंगरेज़ी और संस्कृत में पूरे २ विद्वान् हैं ग्रिफ़िथ साहब का यह अंतिम लेख कि वेदों की चर्चा

ओं से बहुत से देवताओं के नाम प्रकाशित होते हैं सो उनकी यह बात मुझको तब प्यारी लगे और विद्वानोंके समीप प्रमाणिक ठहरे जब वे उस मतलब की कोई ऋचा मुझको लिख भेजें (अ) यद्यपि वेदोंको शीघ्र दृष्टि से देखने से देवताओंके नाम उतने दीख पड़ते हैं जितने कि स्तुति करने वालोंके हैं परन्तु पुराने व्याख्यात ग्रन्थों के अनुसार (कि जोठीक आर्य धर्मके विषयक है) वे अनेक नाम देवता वा मनुष्यों और वस्तुओंके नहीं ठहर सकते अर्थात् वे सब तीन देवताओं ही के नाम से संबंध रखते हैं और फिर वे तीनों नामों की देवता भी पृथक् २ नहीं हैं अर्थात् वे तीनों नाम एकही परमेश्वर के हैं निघंटु अर्थात् वेदों के शब्द कोश के अन्त में तीन नामावली देवताओं की हैं ॥ उन में से पहिली में अग्नि के दूसरी में वायु के तीसरी में सूर्य्य के पर्याय वाची नाम हैं निरुक्त के अन्त भाग में जिसमें केवल देवतों का वृत्तान्त है यह दोबार कथन किया गया है कि देवता केवल तीन हैं (तिस्त्रएव देवता) इनसे अधिक तर अनुमान सिद्धान्त यह निकलता है कि केवल एकही देवता है यह बात वेद के अनेक वाक्यों से भी सिद्ध होती है और यही आशय निरुक्त और वेद के प्रमाण के अनुसार अति सुगम और संक्षेप रीति से ऋग्वेद के सूची पत्र में वर्णन किया है इससे यह निर्णय होता है कि आर्यों के पुराने धर्म मार्ग की पुस्तकें केवल एकही ब्रह्मको गाती हैं और सूत्रों से भी ऐसाही सिद्ध होता है ॥

(ब) वेदों से ज्ञात होता है कि आर्य्य ऋषियों का धर्म मार्ग केवल एक बड़े ब्रह्म के पूजन और श्रद्धा व भक्ति में था जिसको वे

सर्व शक्तिमान सर्वज्ञ और सर्व व्यापक जानते थे और जिसके संबंधी गुणों को वे अत्यन्त पूजनीय वाक्यों में प्रगट करते थे और वे संबंधित गुण उस की तीन प्रकार की शक्तियां हैं उनमें से प्रथम उत्पादक दूसरी पालक तीसरी संहारक नाम से वर्णन की जाती हैं॥

(स) इन अति सत्य ध्यानों से मुझे पूर्ण विश्वास होता है कि चारों वेद एकही ब्रह्म को गाते हैं जो सर्वशक्तिमान अनन्त चिरस्थाई खुयंभू संसारका द्योतक और पालक है मैं इसके संग एक और ऋचा लिखता हूं जिस से एकही ब्रह्म निश्चित होता है उससे आपकी शंका निवृत्ति होगी खूब जानिये कि आर्य लोग स्वाभाविक बुद्धि से सदैव अद्वैतसेवी अर्थात् केवल एक ईश्वर ही को मानते थे॥

(द) उसी उक्त ऋचा का एक चरण यह है जिससे निस्संदेह केवल एकही ब्रह्म का निरूपण होता है यद्यपि हमलोग उसको अनेक नाम से आवाहन करते हैं, ऋग्वेद की पहिली और १६४ और ४६ वीं ऋचा को देखो स्पष्ट लिखा है कि उसी एक पर ब्रह्म को ज्ञानवान इन्द्र मित्र वरुण और अग्नि के नाम से पुकारते हैं कोई कहते हैं कि वह आकाश में सुपर्ण गरुत्मान है और कोई २ बुद्धिवान उसी के अग्नि यम मातरिश्वा आदि अनेक नाम मानते हैं॥

ऋग्वेद में जो प्रथम मंत्र है उसमें अग्नि शब्द आया है उसका उल्था सी एच टानी साहब एम० ए० प्रिन्सिपल प्रेसीडेन्सी कालिज कलकत्ता ने आग के अर्थ में अपने उस प्रथमोक्त ध्यान से किया है कि अग्नि भी एक पदार्थ प्रतिष्ठा का वेद में है परंतु अग्नि को तत्व मान कर किसी प्राचीन ऋषि मुनि ने पूजन व आवाहन नहीं किया और

अग्नि शब्द का जो स्वाभाविक अर्थ आग का है वह केवल उन वाक्यों में लिया जाता है जिनमें लौकिक संबंधी बातें हैं परन्तु ऐसे वाक्यों में जहां ईश्वर की स्तुति प्रार्थना निवेदन आदि का प्रसंग होता है वहां अग्नि शब्द का अर्थ परमेश्वर का घटित किया जाता है यह अर्थ कुछ मैंने मिथ्या कल्पित नहीं किया इस प्रकार के युक्तार्थ ब्राह्मण और निरुक्त नामी ग्रन्थों में बराबर वर्णन हो आये हैं॥

अंत पर टानी साहब की जो यह संमति है कि मैंने जो भाष्य बनाया है वह इस कारण से रचा कि सायन और अंगरेज़ी उल्थाकारों के भाष्य कट जावें अर्थात् अशुद्ध ठहरें सो इस विषय में मैं कभी दूषित नहीं हो सकता हूं अगर सायन ने भूल की है और अंगरेज़ों ने उसको अपना मार्ग प्रदर्शक जान कर अंगीकार कर लिया तो भले हूं करें परन्तु मैं जानबूझ कर भूल का काम नहीं कर सकता परन्तु मिथ्या मत बहुत काल तक नहीं ठहर सकता केवल सत्य ही ठहरता है और असत्य सत्यता के सम्मुख शीघ्र धुमैला हो जाता है पंडित गुरुप्रसाद हेड पंडित ओरियंटल कालिज लाहौर ने यह बात कह कर कि स्वामीजी के भाष्य में कोई अशुद्धी छापे की कहे सो नहीं है मेरे प्रत्येक आशय को दूषित कह दिया है तथापि मैं उनको धन्यवाद देता हूं उनने मेरे भाष्य के छापने वाले का विश्वास माना यह क्या थोड़ी बात है। परन्तु मैं कहता हूं कि उनका भी होवे मेरा ही जानें लेकिन थोड़ा मुंह खोल कर कहें तो कैफ़ियत खुले नहीं तो क्या जान पड़े और जो वे मुझे दूसरे स्थल पर यह दोष लगाते हैं कि अपने ही पंथ का प्रचार किया चाहता है सो मैं ऐसी बातों को सुन अतिपश्चात्ताप से कहता और समझता हूं कि वे वेद विद्या से बिलकुल अज्ञान हैं

यदि उन्होंने प्राचीन भाष्यों का अवलोकन किया होता तो कभी ऐसा न कहते ॥ और तीसरा कलंक जो वे मुझे यह लगाते हैं कि इन्द्र मित्र और त्वष्टा आदि शब्दों के अर्थ स्वामीजीने अपनी ओर से गढ़े हैं सो उनकी इस शंका के उत्तर में मैं उनको वेद भाष्य के विज्ञापनका प्रमाण देता हूं और एक प्रति साथही इस उत्तर के ऐसी लगाये देता हूं कि जिस में उन शब्दों का यथावत् वर्णन है फिर भी इन सब बातों के परिणाम में मुझे निस्संदेह हो यही कहना पड़ता है कि उनमें पुरातन संस्कृत विद्या अत्यन्त ही कम है ॥

चौथा दोष जो वे मेरे व्याकरण में यह आरोपण करते हैं कि परस्मैपद के स्थान में आत्मनेपद लिखा है सो अब मैं इस बात का निश्चय कराने को कि खुद पंडित जी व्याकरणका ज्ञान नहीं रखते कैयट और नागेश आदि ग्रन्थों के कई एक प्रामाणिक उदाहरण पृथक् लिखता हूं और उन स्थलों की नक़ल भी हूबहू उनको भेज सक्ता हूं जिससे मेरा क्रिया प्रयोग कैसा शुद्ध है यह प्रतीत यथेच्छ हो जावेगी और मैंने मौके पर पाणिनीय व्याकरणके प्रथमाध्याय के तीसरे पाद का ४७ वां सूत्र भी लिखा है परन्तु विना व्याकरण बोध क्योंकर उनके समझ में आवे ॥

पांचवीं शंका उनको मेरे स्वच्छंद के प्रयोग पर उपस्थित हुई वह अत्यन्त ही हास्य जनक है जो मैं उसका इस संक्षिप्त उत्तर में कुछ वर्णन करूं तो असार विस्तार होगा रहा उनका समाधान सो उसके लिये पैङ्गलसूत्र और उसके भाष्यकार हलायुध भट्ट का एक सा ही प्रमाण पृथक् लिखता हूं उसे देख भ्रान्ति होवें ॥

ख्याल होता है कि पंडित हृषीकेश भट्टाचार्य्य मुलोच्य ...

ओरियंटल कालिज लाहौर सर्वज्ञ पंडित गुरुप्रसादजी के ही अनुगामी हुए हैं इससे उनकी शंकाओं का उत्तर वही समझना चाहिये जो पीछे लिख आए हैं (उपचारक) शब्द में उनकी एक शंका पृथक् है सो उन्हें यह बात सुझाने को कि मेरा अर्थ बहुत ही निर्मल है मैं उन्हें केवल पाणिनीय व्याकरण के प्रथमाध्याय के तीसरे पाद के ३२वें सूत्र का प्रमाण देता हूं उसको देख पुष्ट होवें ॥

:

अब रहे पंडित भगवानदास असिस्टेन्ट प्रोफ़ेसर संस्कृत गवर्नमेन्ट कालिज लाहौर सो उनकी कोई नवीन शंका नहीं है इस लिये जो कुछ मैंने ऊपर कहा वही बहुत है वेभी होवें इति॥

आर्यगण इस प्रकार इन सब सशंकितों की शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिश्चास्तु करके श्रीमान् दयानिधि स्वामीजी महाराज ने इस आशय का उल्था अंगरेज़ी में कराय उसकी बहुत सी प्रति रूप वा उक्त सशंकितों के सिवाय बहुत से प्रतिष्ठित अंगरेज़ व आर्यों के पास भेज गवर्नमेन्ट को प्रतिज्ञा पूर्वक निश्चय कराया कि मेरा भाष्य यूरोप आदि के भाष्यों से विरुद्ध होने पर भी पुरातन भाष्य सम्मत होने के कारण सर्वत्र आदरणीय होना चाहिये इसके प्रचार से समस्त पाठशालाओं को भी बड़ा लाभ होगा सम्पूर्ण सत्य विद्याओं की वृद्धि के सिवाय अपरमित देशोन्नति के साथ अधर्म की निवृत्ति- सत्य धर्म कर्म की प्रवृत्ति और आत्यान्त सुख की प्राप्ति निरन्तर होती रहेगी ॥ तब से कोई दिग्गज तो चिंघाड़ नहीं आनोकि बहुत ठौर सुनने में

आई उनको धुतकार भी होगई और होती रहेगी अस्तु ॥ यथाकृतिस्तथाफलम् ॥ हमको अपने काम से काम सो करते हैं अर्थात् आगे इसके आपको आधुनिक आचार्यों के रचित वेद भाष्यों का कुछ निदर्शन दिखलाना बहुत अवश्य है क्योंकि (लोकापवादात्भयम्) अर्थात् लोग कहेंगे कि अपनों की स्तुति औरोंकी निंदा करना जनरीति है सो यहां लेश मात्रकोभी नहीं है हम ज्योंका त्यों दिखला रहे हैं ॥

देखिये महीधराचार्य्य जी की यजुर्वेद भाष्य रचनाको पृष्ठ ७०८ से लेकर ७३२ तक कैसा भ्रष्टार्थ अश्वमेध प्रकरण के मंत्रों का किया है सत्य पूछिये तो ऐसा असंभव आशाय बालभाषणों काभी कभी किसी ने न सुना होगा और आचार्यजी ने तो ग्रन्थही पूरा किया है पोप लोग भी इन्हीं का दम भरते हैं हा कितना खेद ॥

अथ महीधर भाष्यम्॥

गणानां त्वा गणपतिᳪं हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिᳪं हवामहे निधीनां त्वा निधीपतिᳪं हवामहे वसोमम ॥ आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥१॥

॥ भाष्यम् ॥

अस्य मंत्रस्य व्याख्याने महीधरेणोक्त मस्मिन्मंत्र गणपति शब्दादश्वो वाजी ग्रहीतव्य इति । तद्यथा ।

महिषी यजमानस्य पत्नी यज्ञशालायां पश्यताम् सर्वेषामृत्विजा मश्व समीपे शेते शयाना सत्याह हे अश्व गर्भधं गर्भं दधाति गर्भधं गर्भधारकं रेतः अहं आ अजानि आकृष्य

क्षिपामि त्वं च गर्भधं रेतः आ अंजासि आकृष्य क्षिपसि ॥

ता उभौ चतुरः पदः संप्रसारयाव स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथां वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु ॥ २ ॥

॥ महीधरस्यार्थः ॥ अश्वशिश्न मुपस्थे कुरुते वृषा वाजीति । महिषी स्वयमेवाश्वशिश्न माकृष्य स्वयोनौ स्थापयति ॥

यकासकौ शकुन्तिका हलगिति वञ्चति । आहन्ति गभे पसो निगल्गलीति धारका ॥ ३ ॥

महीधरो वदति ।

अध्वर्य्यादयः कुमारीपत्नीभिः सह सोपहासं संवदन्ते । अ-गुल्या योनिं प्रदर्शयन्नाह असौ या शकुन्तिका योनौ हलहला शब्दो भवतीत्यर्थः । अस्यां योनौ शकुन्तिसदृश्यां यदा पसो लिंग माहन्ति आगच्छति । पुंस्प्रजननस्य नाम हन्तिर्गत्यर्थः ।

यदा भगे शिश्नमागच्छति तदा धारका धरति लिंग मिति धारका योनिर्निगल्गलीति नितरां गलति वीर्य्यं क्षरति यद्वा शब्दानुकरणं गल्गलीति शब्दं करोति (यकासकौ०) कुमारी अध्वर्य्यु प्रत्याह । अंगुल्या लिंगं प्रदर्शयन्त्याह । अग्रभागे सच्छिद्रं लिंगं तव मुखमिव भासते ॥

माता च ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्य रोहतः । प्रतिलामीति ते पिता गभे मुष्टिमतꣳसयत् ॥ ४ ॥

॥ महीधरस्यार्थः ॥

ब्राह्मा महिषीमाह महिषि हयेहये महिषि ते तव माता च पुनस्ते तव पिता यदा वृक्षस्य वृक्षजस्य काष्ठमयस्य मंचकस्याग्र मुपरिभागं रोहतः आरोहतः तदा ते पिता गभे भगे मुष्टिं

मुष्टि तुल्यं लिगमतं सयतं सर्थाने प्रक्षिपति एव तवोत्पत्तिरित्य श्लीलम्। लिंगमुत्थाने नालं करोति वा गव भोगेने लिह्यामीति वदन् एवं तवोत्पत्तिः॥

ऊर्ध्वं मेना मुच्छ्रापय गिरौ भारं हरंन्निव। अथास्यै मध्यं मेधतां शीते वाते पुनन्निव ॥५॥

॥ महीधर स्यार्थः॥

यथा अस्यै अस्या वा बालाया मध्य मेध। योनिप्रदेशो वृद्धिं यायात् यथा यानिर्विशाला भवति तथ। मध्ये गृहीत्वोच्छ्रापये त्यर्थः। दृष्टान्तान्तर माह। यथा शीतले वायो वानिपुनन्धान्य पवनं कुर्वाणः कर्षीव लोधान्य पात्रं ऊर्ध्वं करोति तथेत्यर्थः

यदस्या अंहुभेद्याः कृधुस्थूल मुपातसत् ।
मुष्का विदस्या एजतो गोशफे शकुलाविव॥६॥

अस् यदा अस्याः परिदकायाः कधु ह्रस्वं स्थूलंच शिश्नमुपातसत् उपगच्छत् योनिं प्रतिगच्छत् तंस उपलक्षये तदा मुष्को वृषणौ इत् एव अस्याः योने रुपरि एजतः कंपेते लिंगस्य स्थूलत्वा द्योने रल्प त्वा दृषणौ बहिर्भिष्ठत इत्यर्थः। तत्र दृष्टान्तः गोः शफे जलपूर्णे गोः खुरे शकुलौ मत्स्याविव यथा उदकपूर्णे गोः पदे मत्स्यौ कंपेते।

यद्देवासो ललामगुं प्रविष्टीमिन माविषुः। सक्थ्नादेदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा॥७॥

॥ महीधर स्यार्थः॥

यत् यदा देवासः देवाः दीव्यन्ति क्रीडन्ति देवाः ऋत्विजो ललामगुं लिंगं प्राविषुः योनौ प्रवेशयान्त ललामेति

सुखनाम ललाम सुखं गच्छति प्राप्नोति ललामगुः शिश्नः। यद्वा ललाम पुंडं गच्छति ललामगुःलिंगं योनिं प्रविश्यादुत्थितं पुएड्राकारं भवतीत्यर्थः। की दृशं ललामगुं विष्टीमिनं शिश्नस्य योनिप्रदेशे क्लेदनं भवतीत्यर्थः। यदा देवाः शिश्न क्रीडिनो भवन्ति ललामगुं योनौ प्रवेशयन्ति। तदा नारीसक्थ्ना ऊरुणा ऊरुभ्यां देदिश्यते निर्दिश्यते अत्यन्तं लक्ष्यते। भोग समये सर्वस्य नार्य्यङ्गस्य नरेण व्याप्तत्वा दूरुमात्रं लक्ष्यते। इयं नारीतीत्यर्थः॥

यद्धरिणीय वमत्ति न पुष्टं पशु मन्यते। शूद्राय दर्य्यजारा न पोषाय धनायति॥८॥

॥महीधरस्यार्थः॥

क्षत्ता पालागलीमाह। शूद्राशूद्र जातिः स्त्री यदा अर्य्य जारा भवति वैश्यो यदा शूद्रां गच्छति तदा शूद्रः पोषाय न धनायते पुष्टिं न इच्छति मद्भार्य्या वैश्येन भुक्तासती पुष्टा जातेति न मन्यते किन्तु व्यभिचारिणी जातेति दुःखितो भवतीत्यर्थः।

(यद्धरिणी०) पालागलीक्षत्तारमाह। यत् यदा शूद्राः अर्य्यायै अर्य्याया वैश्यायाजारो भवति तदा वैश्यः पोषंपुष्टिं नानुमन्यते मम स्त्री पुष्टा जातेति नानुमन्यते किंतु शूद्रेण नीचेन भुक्तेति क्लिश्यतीत्यर्थः।

उत्सक्थ्या अवगुदं धेहि समंजिं चारयावृषन्। यस्त्रीणां जीवभोजनः॥९॥

॥ महीधरस्यार्थः ॥

यजमानोऽश्वमभिमंत्रयते। हे वृषन् सेक्तः अश्व उत् ऊर्ध्वे

तक्थिनी ऊरू यस्या तस्या महिष्या गुदमध्ये गुदोपरि रेतो धे हि वीर्य्यं धारय। कथं तदाह अंजिलिंगं सञ्चारय योनौ प्रवेशय। योः ऽ जिः स्त्रीणां जीव भोजनः। यस्मिन् लिंगे योनौ प्रवेष्टे स्त्रियो जीवन्ति भोगांश्च लभन्ते तं प्रवेशय॥ इति महीधर भाष्य निदर्शनम्॥

आर्य्यगण देखा आपने मही धरभाष्य कहिये जैसा हम ऊपर लिख चुके उससे अधिक निंद्य है वा नहीं जिन पाठक गणों को संस्कृत में अभ्यास न होवे पैसा टका दक्षिणा देकर किसी नामी पोप देवजी से इसका अर्थ सुनकर महीधरादि भाष्य कारों को साष्टांग नमस्कार करें॥ वाह धन्य हैं उनकी विशाल बुद्धि को उनके सिवाय कौन ऐसा वेदों का गुप्त भाव बतावे। मैंने बहुतेरा साहस इसका भावार्थ प्रकाशित करने में किया परंतु लेखनी न चली॥ यजमान की स्त्री घोड़े के साथ बीच यज्ञशाला में हजारों मनुष्यों के सन्मुख अश्वमेध नाम के यज्ञ में मैथुन करवा रही है उस समय उससे पुरोहित हंसते और वह भी उनको वैसाही उत्तर देती है इत्यादि जो २ अश्लील और असंभव कर्म इन महात्माजीने वर्णन किया है ऐसा कभी कोई मूर्ख मनुष्य भी मुंह से नहीं निकाल सक्ता कहिये कैसे किसी की वेदों पर श्रद्धा होवे और जो ऐसे भाष्य हों तो क्यों वेद सर्वथा सर्वत्र भ्रष्ट न कहावें इसी लिये श्रीमान् वेदोद्धारक महाराजने अति प्राचीन रीतिका नवीन अपना भाष्य रचकर सब जगत का भ्रम और अन्धकार दूर किया है॥ देखिये इन्हीं मंत्रोंका अर्थ श्रीमान् ने परमेश्वर और राजा प्रजापालन विषयों में कैसा सर्व सत्य प्रमाणों से सिद्ध किया है तभी हम उनको बहुविध धन्य

वाद देते हैं ऐसा ही समझना और करना सबको सदैव उचित है ॥

इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य दयानन्द सरस्वती दिग्विजयार्कीय द्वितीयांके श्रीभाष्यप्रदर्शनंनाम चतुर्थो मयूखः ॥

अथ पंचमो मयूखः।

तत्रादौ सामाजिक चरित्रम्

आर्यगण पिछले ४ मयूखों के द्वारा आपलोगों को श्रीमान् सकल विद्या निधान श्री स्वामीजी महाराज की ग्रन्थ रचना भली भांति द-र्शा चुका इतनाही नहीं किन्तु इस प्रसंग से बहुत सी परमो-पयोगी बातें सब पर प्रकाशित की गई हैं॥

प्रसिद्ध है कि ग्रन्थ रचना जैसी की चाहिये वैसी बिना एकान्त स्थिति के नहीं बन सक्ती परन्तु प्रतापी श्रीमान् बराबर देशाटन करते हुये इस काम को कर रहे हैं सहस्रशः धन्य बाद है उन के पुरुषार्थ को देखिये प्रतिदिन सन्मुख आये हुए सैकड़ों मनु-ष्यों को यथेच्छ उत्तर देकर तथ्य समझाना नियमित समय पर सभा में जाकर तीन घंटा व्याख्यान देना और ऐसे २ अतुल ग्रन्थों को बनाना ये तीनों देशोपकारी काम सतत करते हैं सिवाय इ-सके दैहिक आत्मिक और सर्व सामाजिक कार्य भी प्रत्यह यथा-वत् होता है परन्तु सदैव एक रस और निरालस्य ही देखे गये उन-के समीप कोई राजा आवे चाहो रङ्क। वह उत्साही हो वा विरोधी एक हो अथवा अनेक परन्तु हमने श्रीमान् को उन सब के साथ ए-क ही सा कृपालु और आनंद मग्न पाया॥

विक्रमी सम्वत् १९३२ से लेकर अबतक अर्थात् इस सात वर्ष के भीतर लाखों मील चलने फिरने और मनुष्यों से मिलने और पूर्वोक्त सब ऐ-से ग्रन्थ बनाये कि जिनके प्रकाश और प्रभाव से हजारों वर्ष के भूले लाखों मनुष्य सुमार्ग लगे और बम्बई लाहौर फ़ीरोजपुर, अमृतसर

र, गुरदासपुर, रावलपिंडी, वज़ीराबाद, गुजरात, गुजरानवाला, भेलम, मुल्तान, लुधियाना, सहारनपुर, रुड़की, मेरठ, मिर्ज़ापुर, दानापुर, पिशावर, देहरादून, मुरादाबाद, फर्रुखाबाद, ओर्ली, रामगढ़, कानपुर, बदायूं, बनारस, प्रयाग, मैनपुरी, आगरा, देहली, एटा, नरसिंहपुर, आदि बहुत से नगरों में आर्य समाज स्थापित हुए और होते जाते हैं॥

सन् १८८५ ई० के आरम्भ में पानियर अख़बार वाले ने कुल ५० समाज और तीन लाख आर्य संख्या लिख प्रकाशित की और पश्चात् एक परिवत्सर के थ्यूसूफ़िकल सुसैटी के सभापति अमेरिका वाले कर्नैल अल्काट साहब ने (जो कि २० मास से इस भरत खंड में आबसे हैं) जहां तहां अपने व्याख्यानों में ६० समाज और बे शुमार उनके अनुयायी वर्णन किये हैं इस से सिद्ध होता है कि इन दिनों ७० समाज और पांच लाख के लगभग उनकी मनुष्य संख्या है आगे जैसा काल बढ़ता जाय वैसी ही ये दोनों संख्या वृद्धिंगत समझते रहो अब रहा इन समस्त समाजों की कर्तव्यता का जानना सो आगे लिखे उनके नियमों से प्रकाशित होगा॥

अथ सामाजिक नियमाः

(१) सब सत्य विद्या और विद्या से जो पदार्थ जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है॥

(२) ईश्वर सच्चिदानंद स्वरूप निराकार अनुपम सर्वाधार सर्वेश्वर सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी अजर अमर अभय नित्य पवित्र और सृष्टि कर्त्ता है उसी की उपासना करनी योग्य है॥

(३) वेद सत्य विद्याओं की पुस्तक है वेद का पढ़ना पढ़ाना सुन-ना सुनाना आर्यों का परम धर्म है ॥

(४) सत्य के ग्रहण और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये ॥

(५) सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर करना चाहिये ॥

(६) संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ॥

(७) सब से प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्त्तना चाहिये ॥

(८) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये ॥

(९) प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये कि-न्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये ॥

(१०) सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालने में परतन्त्र और प्रत्येक हितकारी नियम में स्वतन्त्र रहना चाहिये ॥

इति नियमाः ॥

कहिये आर्य गण कितने निर्मल और श्लाघ्य ये सब नियम हैं य-दि ठीक २ इन पर लोग चलें तो क्या करना बाकी रह जाय ॥

भाई हो मनुष्य जन्म तभी सफल होगा जब इन परम प्रशस्त और सर्व मान्य नियमों पर तन मन धन से आरूढ़ होंगे ॥ जिनको अ-पने और अपने देश के कल्याण करने की इच्छा होवे क्षण मात्र अब विलम्ब न करें क्योंकि जितनी देर करेंगे उतनी ही हानि हो-गी और जान बूझ के हानि कर लेना बुद्धिमत्ता नहीं इस लिये चेतो चेतो चेतो और झट पट [illegible] के जाल[illegible]

ऊपर जो हम पांचलाख आर्य संख्या लिख चुके हैं ये कोई इस ७ वर्ष के भीतर इतर देशों से नहीं आगये न आकाश से आकर गिरे हैं ये सब के सब तुम्हारे ही देश निवासी इष्ट मित्र और सुजन संबंधी हैं। कालकी बात है कि ये सब लोग मूर्ति पूजक ही थे टुक देखो और सोचो कि ये क्यों अपने बाप दादों की चाल ढाल त्याग क्षण मात्र में और के और हो गए यदि कहो कि अज्ञानता से तो हो नहीं सक्ता क्योंकि यह धर्म ऐसी वस्तु है कि इसका परित्याग सहसा कोई भी नहीं कर सक्ता कहो संवत् १९१४ के ग़दर का क्या कारण है देखो मुसलमानों ने अपने समय में बड़े२ राजा रईस और ब्राह्मणादिकों पर धर्म छोड़ने के अर्थ कैसा२ ज़ोरो ज़ुल्म किया। लोगों ने अपने प्राण गंवाये पर धर्म नहीं छोड़ा अभी और ईसाई लोग सोचो कैसे२ यत्न करते और नाना प्रकार के लोभ लालच दिखाते हैं परन्तु उनका सब रुपया और प्रयत्न तथा परिश्रम व्यर्थ जाता है यदि हज़ारों में कोई एक निर्बुद्धि वा लालची वा कृतघ्नी वा कुसंस्कारी फांसभी गया तो वह दूसरे ही दिवस रोता और जन्म भर पछताता है जब देखता है कि अब मैं किसी प्रकार इधर नहीं मिल सक्ता तब लाचार होउन्हीं में कालक्षेप करने लग जाता है ऐसों में जो मूर्ख निर्लज्ज होते हैं वे मनादी भी करने लग जाते हैं परन्तु ऐसे बहुधा वही होते हैं जो अल्पावस्था में किसी प्रकार ईसाईयों के हाथ पड़ गये वा कोई चांडाल जाति के हुए जब इस प्रकार बल बत्तर यह धर्म संकट है तो फिर कहो कि आप लोग क्यों वृथा आर्यों की तर्फ़ से भ्रम में पड़े हो कोई कहे कि आर्य समाजियों में कोई विद्वान् तो अब तक

हुआ ही नहीं सो भी अत्यन्त भूल है नैक नीची (४) दृष्टि कर दे खो और इस पुस्तक के पृष्ठ ६१ से लेकर ६६ तक लौटो पलटो कपाट खुल जावेंगे अर्थात् जान जाओगे कि इन समाजों में बहुत से ऐसे बड़े २ विद्वान् और वेद शास्त्र के जानने वाले सत् पुरुष मौजूद हैं कि जिनके सन्मुख पोप तो क्या किसी पोप राज कोभी साधारण बात न बहते बनेगी फिर शास्त्रार्थ करना कैसा। सिवाय इसके परमात्मा ने आप हिन्दू नाम धारियों कोभी आंख कान मुंह और बुद्धि दी है थोड़ा काल खर्च कर इन समाजि यों के पुस्तक देखो व्याख्यानों को सुनो जी में आवे वह पूछो

नोट (४) थोड़े दिन हुए तब मुकाम कलकत्ता में पंडितों की एक सभा हुई थी सभा क्या थी मानों ठीक कुहक लोगों का एक जल्सा था कैफ़ियत इसकी यह थी कि जो २ पंडित महेशचन्द्र न्यायरत्न पूछते गए उस उसको शुक्लाम्बर शास्त्री उनकी प्रसन्नता के अनुसार वैसाही साधते गए जैसा कि उन पंडितजी महाराज को अभिमत था और शास्त्रीजी जो शब्द मुंह से निकालते थे उसको सब पंडित लोग वाहवा जी वाहवा बहुत ठीक बहुत ही ठीक कहते गए बस थोड़ी ही देर में सिद्धकर मौजूद किया कि स्वामी दयानन्द जीका कहना सब अशुद्ध और पंडित महेश चन्द्र जीका विचार परम शुद्ध है इसपर अखबार बिरादर हिन्द भी बहुत कुछ उछले उनको जामे से बाहर हुए देख मेरठ समाज ने फिर लौट उसी पिंजरे में किया जिस्में कि वे प्रथम थे॥

खुलासह उसका यह है कि मेरठ समाचार कहता है कि हम मानते हैं एडीटर साहब बिरादर हिंद की इस बात को कि मूर्ति पूजकों में सब नर एकही सांचे के ढले और बेईमान नहीं हैं परंतु यह कहना तब ठीक था जब कोई ईमानदार मूर्ति पूजक स्वामीजी महाराज रचित ग्रन्थों को पढ़ उसे उस प्रकार के इतर ग्रन्थों से मिला कर कायल हो आर्य समाजी न बन गया होता इन दिनों जो विद्वान् हमारे समाजों में हैं सोचैं कि वे कहां से आए उनमें से बहुतेरे स्वामीजी के वेद भाष्य बनने से प्रथम मूर्ति पूजक थे बहुत से ऐसे हैं कि जो उक्त भाष्य रचना से पूर्वही अपनी हर्ष विद्या बल से वेदों का मुख्यार्थ समझ मूर्ति पूजा त्याग चुके थे परन्तु थे सब कुलपरंपरा से मूर्ति पूजक थे और बहुत काल तक खुद भी मूर्ति पूजा करते रहे कदाचित्

और उनके लिये उत्तरों को एकान्त बैठ विचारो कि कौनसा पक्ष सत्य है और ठीक मार्ग न जानने से अबतक अपने देशवासियों की क्या २ हानि हुई और जो अबभी सत्य मार्गावलम्बी न होंगे तो क्या २ दुर्दशा न होगी परन्तु यह ठीक समझ तभी आवेगी जब पक्ष पात छोड़ विचार करोगे और जो पोपों ही की बकवाद में पड़े रहे तो अवश्य सड़ोगे और बहुतेरे कहीं तो भी जाकर जा डूबोगे इस लिये जो किनारे लगना है तो सत्य रूपी नौका जिस शीघ्र लेकर जगत्प्रख्यात श्रीजी महाराज की आज्ञा पर चलो नहीं तो गंधर्वसेन की कहावत चरितार्थ होगी ॥

वह कथा इस प्रकार है कि एक नगर के चौकीदार ने प्रातःकाल चौकी पर जाकर रपट दी कि रात सब प्रकार मेरे हल्के में खैर रही पर गंधर्वसेन मर गये जमादार ने शोक के साथ सुनना वैसे ही

में सन्देह उत्पन्न हुआ तब विचार करके बहुत कुछ निदान जान गया कि मूर्ति पूजा वेद विरुद्ध है यों तो आर्य समाजों में संस्कृत विद्या के सैकड़ों उत्कृष्ट विद्वान हैं परन्तु—नाम मात्र को ऐसे हैं जिनको अपने देश का अलंकार कहना चाहिये जैसे बम्बई आर्य समाज के सभापति श्रीयुत राव बहादुर गोपाल राव हरि देशमुख लंदन के संस्कृत विश्व विद्यालय के प्रोफेसर श्रीयुत श्याम जी कृष्ण वर्मा हैदराबाद सिंध के इनके साहब बंबई के कुंवे साहब मुरादाबाद के मुन्शी इन्द्रमणिजी सहारनपुर वाले पं० लक्ष्मीदत्तजी मुलतान के पं० कृष्ण नारायणजी आदि।

असल मतलब यह है कि जिन खोजा तिन पाया गहरे पानी पैठ अरु जिन बेचारों ने कभी खोजा ही नहीं न इच्छा उनको कुछ ध्यान न उतनी विद्या वे क्या पावेंगे बस खंडन हो गया परन्तु और भी सुनो बहुत से मूर्ति पूजक विद्वानों से जिन्हें हम पोप कहते हैं हमको प्रसंग पड़ा जिससे यह बात खुल गई कि उनको अंतःकरण से पूर्ण निश्चय हो गया है कि स्वामीजी जो कुछ कहते व लिखते हैं वह सब सत्य है कितनों ही ने तो स्पष्ट कह भी दिया कि भाई स्वामी जी महाराज की प्रशंसा हमसे तो नहीं सकती परन्तु जो हम अपना वे मानि प्राय सर्वत्र प्रकाशित करें तो सेर भर आटे से भी जायं बिरादरी ने काला मुंह हो य तो जुदा पंडित नन्दकिशोर साहब भरतपुरी और पंडित कुंदनलाल साहब

रपट कोतवाल को जा सुनाई उसने बड़े दुःख के साथ दीवान रियासत तक यह खबर पहुंचाई वे वैसेही बहुत उदास दर्बार में पहुंचे दर्बारियों ने दीवान जी को उदास देख अपनी भी सूरत उनसे अधिक गमगीन बना कर उनसे बाइस उदासी पूछा उन्होंने भारी उसांस खींच वह हाल कह सुनाया सुनतेही दर्बारी लोग फूठ २ कर आंसू बहाने लगे यह खबर धीरे २ राजा साहब के भी गोशज़द (कर्णगोचर) हुई सुनते ही बोले हाय बड़ो गुज़ब भयो घंटा भर सन्नाटा रहा फिर हुक्म हुआ कि दीवान जी से कहो कि दर्बार बरखास्त करदें और जल्दी मदद करने को फ़ौज पठवें निदान क्या राजा क्या प्रजा सबने खूब मातम कराया—चार दिन बाद किसी दूसरे राज्य के कोई ओफीशियल (एलची) आये उन्होंने मुलाक़ात के समय सब का गुमान देख बड़े अदब के साथ पूछा कि हुज़ूर सर्कार के मातम का कारण क्या हुआ राजा साहब ने चौंककर कहा ऐं क्या अब तक आपके यहां गंधर्वसेन की खबर नहीं भई वाह तुम्हारी रियासत में तो बड़ोई अन्धाधुन्ध है इधर दर्बारियों ने भी हंसकर दाद दी। बेचारे ओफीशियल साहब अथवा तो कुछ लेहाज़ से हूं २ फिर होठ हो

नजीबाबादी यद्यपि अभी मूर्ति पूजक तो हैं परन्तु स्वामी जी की बात को मिथ्या कहने वालों से कुढ़ जाते हैं। पंडित रघुनाथ साहब का जो कुछ मासिक किसी समाज में निकल हो जाय तो देखो कैसा जी खोलते हैं पंडित श्यामलदास जी सन्मन्तरी साफ़ कहते हैं कि कोई आकर हमको स्वामी जी की अशुद्धि दिखावें तो सही इसी प्रकार के हम चालीस पचास पंडितों का नाम बता सके हैं कि मूर्ति पूजक तो हैं पर हठधर्मी नहीं कुमार बाबू पृथ्वी सिंह साहब सपथ पूर्वक करते हैं कि हमसे काशी के स्वामी विशुद्धानंद जी ने स्पष्ट कहा कि निःसंदेह पंडित दयानंद जी का वेदभाष्य बहुत ठीक सर्वांग शुद्ध और अतिमान्य है परंतु ऐसा सबके सामने कहूं तो सभी सारी प्रतिष्ठा धूर में मिल जाय बस सब बुद्धिमान विचारें कि इस जगत की क्या लीला है॥

बोले कि हुज़ूर गंधर्वसेन कौन थे राजा साहब बोले "जौ हम का जाने," दीवानजी से पूछो। दीवानजी बोले कि हुज़ूर ठीक हाल तो मोऊ को नहीं मालूम मोसे तो कोतवाल ने कही थी यों होते २ फिर लौट चौकीदार के सिर आई उसने मकुआ धोबी पर उतारी वह रोबरू दर्बार के हाज़िर किया गया पूछा क्यों रे धोबी वाले गंधर्वसेन के मरबे की खबर तूने इस चौकीदार से कही थी वह हाथ जोड़ कर बोला कि हां हुज़ूर कही तो ज़रूर हती कोतवाल ने धमका कर कहा अच्छा तो बताने को हते बोला हते को कोऊ नहीं वो तो हुज़ूर के गुलाम को गधा हतो। यह सुनतेही प्रतिनिधि साहब ने मुंह को रुमाल लगा कर अपनी हंसी रोकी राजा सहित दर्बार चुप और आंखें मले धरती की ओर — कहिये आर्य गण क्यों यह दर्बार इस प्रकार आज लों बदनाम क्यों इसकी मूंछ मुड़ी और क्यों दूसरों के आगे इसको ऐसा लज्जित होना पड़ा। केवल बिन सोचे विचारे काम कर बैठने से वा कुछ और। बस यही दशा पोप प्रचारित धर्म की जानो। सैंकड़ों वर्ष से मुसल्मान जैनी और ईसाई इनके धर्म की धूल उड़ावें और ये चुप सुनें यों होते २ सर्वत्र वैदिक धर्म पामाल होगया हज़ारों अपने हकीकी भैय्या हाथ से निकल गए अर्थात् वैदिक धर्म छोड़ जैनी मुसल्मान् और ईसाई हो गए और होने को थे। हाय कैसा शोक और अपार यह दुख था। कि जिस्को श्रीमान् परमदयालु स्वामीजी महाराज ने नरसिंह रूप धारण कर दूर किया नहीं तो न मालूम अब तक और कितने हमारे भाई बेटा हमसे न बिछुड़ जाते अर्थात् जितने ये नव शिक्षित युवा इन दिनों पढ़कर स्कूल कालिज छोड़ते उनमें से बहुत कम अबलों घर के रहते खैर गुज़री जो वह बला बूटकोट पतलून और चुरट तकही रही अब तो हमारे ९० वर्ष के लड़के ईसाइयों का नाक में दम करते हैं इस लिये कहा जाता है कि प्यारे चेतो और आंखों से बंधी अपनी पट्टी खोलो अपने गए दिन फिर कर फिरे समझो। देखो अखबारों को वही जैनी आदि लोग अब मज़ा कहें तुम्हारा वैदिक धर्म स्वीकार कर रहे हैं — कहो यह किसका प्रताप। जिनका तुम अबलों विश्वास करते और दम भरते हो वे तो डुबोही चुके थे अर्थात् धन विद्या बुद्धि चतुराई और राज पाट तो खोही चुके थे भाई बेटा और जानहार थे सो बच गए यदि इन पोपों में कुछ सत्य विद्या होती तो अवश्य उनके

द्वारा ये लोग वेद द्वेषियों का मुख ध्वंस करते जब कहीं कोई एक भी ऐसा न कर सका तो फिर क्यों कर ये लोग विद्वान् वा बुद्धिवान् कहे जा सके हैं इन्होंने तो वेद रक्षा के ठौर अपनी तोंद रक्षा को मुख्य धर्म समझ रक्खा है जब उसकी रक्षा में बाधा दीखी तभी आर्य समाजों के मिटाने को धुल रबे और उनका नाम धर्म सभा रख हाय तोबा मचाने लगे पर मारते मर्द का सामना करना बहुत दुर्घट होता है दूर से ही छहक कर झूठे सन् के गोले चलाने लगे भला क्योंकर ग्राफ़ और बम्ब के गोलों के आगे वे धुस ठहर सके थे सब उड़ गए और उनके ठौर बड़े २ गार पड़ गए निदान चार दिनकी दर फिस करके सबके सब घायल से घर पड़े हाय रुका हाय रुका पुकार रहे हैं और उपकार मानने के बदले हजारों दुर्वचन श्रीमान् को सुनाते हैं अनेक मिथ्यादोषों से आर्यों की सभा और सभासदों को दूषित करते हैं उनके चलन व्यवहारों और विवाहादि कार्यों में हानि पहुंचाने में अनन्त प्रयत्न भी करते हैं बहुतों ने अपने मेली कुछ आदमियों को ले उनको बावन (बनावटी) आर्य बनाय उनको सर्वत्र घुमाय उनसे पश्चात्ताप कर वाय प्रायश्चित्त देना प्रसिद्ध किया है (५) इस लिये जिस से फिर कोई आगे इन

नोट (५) देखिये आर्यगण इनका बुद्धि वैचित्र्य। सर्वजगत् के उपकारक सत्य सनातन वैदिक धर्म प्रचारक आर्यों को प्रायश्चित्त के योग्य ठहरावें और नीचे लिखे समस्त हुए दशाओं को लीन कुलीन और परम प्रवीण बतावें। आंखों के अन्धे नाम नैन सुख वा कमल नैन। इस कहावत को भला सिवाय ऐसों के और कौन सत्य कर दिखावें वाह पोपजी वाह धन्य है आपकी विद्या और चतुराई इसी का यह प्रभाव है कि इतर जातीय लोगों के सदृश तुम्हारे सजातीय और स्वरे घीय भी तुमसे घृणा करने लगे। तुम लोग तो आयुधारा के किनारे आ लगे परन्तु बड़ा भारी खेद है हमको तुम्हारी सन्तान का सोचो उन की क्या दशा होगी॥

लोग ब्राह्मणादिक उत्तम वर्णों के कहावें परन्तु पशु पक्षियों को स्वहस्त से मारें और खावें तथा होर लों में भी उनने पकड़े आवें और बहुतेरे प्रकार २

फिर कोई आगे इनके समाजों में न जा मिले और जो हैं वे डर कर इधर
आजावें बाज़ और फौजदारी भी कर बैठें अंत को कोई जुर्माना दे घर
आए कोई जुर्माना देने और मुचलका लिखने के सिवाय बारा गा-
र सेवी भी डर यहां तक हो नहीं किन्तु ये लोग [illegible] के

कर मद्य पियें गांजा चर्स और भंग को मौज में उड़ावें। महा भ्रष्टाचारी कुचाली और
कुमार्गों को आचारी पुजारी और कुलपूज्य गुरु आचार्य गुसाईं कह कर उनकी जूठ-
न और मूत्र मल वस्त्र के निचोड़न को महा प्रसाद मानें और पावें और इनको अ-
पनी स्त्रियां समर्पण करें तथा भंगी चमार चूहड़े और मुसल्मान [illegible] संत म-
हंत बन इनके माल खावें और अपने हाथ का इनको भी खवावें तथा यहां से कोरे
पानी तक रह कर सालोंसाल का स्वाद आवें परन्तु घर आये पीछे ज्यों के त्यों वा-
पेई बन जावें जुआ खेलें चोरी करें और कर बावें धनिकों के यहां भडुओं का सा काम दे-
वें नाचें मटकें गावें और नक़लें करें तथा उनकी गाली सुनें और वेश्याओं को भी दस्तू-
री रक्खें तथापि त्रिवेदी और चतुर्वेदी ही बन कर बुड्ढे बुड्ढों को अबला कन्या ब्याह
कर रोकड़ लेवें और उनको रांडी करवाय आयुभर सारा कुटुंब उसका माल खावें प-
रंतु पवित्र ही जाने जावें। इनको भी स्वामि विवाहिता को छोड़ चमारी चूहड़ी और
यवनी को उसके स्थान वाबजन्म बिठालें और विधवा अथवा अपनी पराई मात-
सम साथी भाभी काकी बूआ मौसी गुरुस्त्री और बहन बहू बेटी को भी न बचावें।
मंदिरों और तीर्थ स्थानों में पर स्त्रियों को घूरें और दाव पड़े वहां धर मारें तथापि भ-
गत जी कहावें। लड़कों के साथ वृथा ही अपना अमोल्य वीर्य बहावें गर्भ गर्भ
गिरावें और दर्द के रूप लड़का लड़की और चलते फिरते आदमियों को मार के प-
कड़े न जावें प्रति दिन गंगा तुलसी सालिग्राम उठा कर हज़ारों मिथ्या गवाही
देवें और सत्य गवाही आपड़े पर मुंह छिपावें अनेक जाल फंद करें [illegible]
करें और अनेक विधवाओं का धन धरोहर छीन अपनी कर लेवें पर कदापि कु-
ल न रहें कसाइयों के हाथ गौ बेचें कट वावें तथापि गौ के भक्त होवें और गं-
गा यमुना के प्यारे पुत्र ही बजें और माने पूजे भी जावें ऐसे ऐसे अनेक प्रकार के सब
पातकी और महा पातकी पापों को दण्ड देने के कारण उनके मत में सील और ज-
दों दण्ड न देने के कारण आर्य समाजी अति शुद्ध होने पर भी मलिन ठहराये जा-
वें वाह रे न्याय॥

प्राण हरणार्थ भी बहुविध बल कर चुके हैं और यह काम नगर फ़र्रुख़ाबाद तथा काशी आदि कई स्थानों में हुआ निदान जब कोई उपाय काम न आया तब हार मान चुप हुए। इस प्रकार के स्वार्थी कृतघ्न पातकी लोगों के समागम से किसका कल्याण हुआ वा होगा वा होने को है और जो ऐसे लोग सभ्य कहावें तो कहिये राक्षसादिकों का नाम धरा जावे मूर्ति पूजा को परम धर्म बतावें परन्तु उस मत के पुष्टि करने वालों पर उस विषयक कोई विपत्ति आ पड़े तो कभी उसके सहायक न होवें देखो मुरादाबाद के मुंशी इंद्रमणिजी पर चार साल मुसल्मानों ने कैसी विपत्ति ला डाली थी कि जिससे भरत खंड भर में हिल चल पड़ गई तथा उन पर ५००) रुपया जुर्माना हुआ सैकड़ों रुपया मालियत के पुराण और मूर्ति पूजा पुष्टि कारक उनके बनाये हुए सब ग्रन्थ चलाये गये परन्तु किसी पोपोक्त धर्मसभा वाले ने उनकी मदद न की धन देना तो दूर तन वा मन तक किसी ने उस तरफ़ न लगाया॥ आर्य समाज फ़र्रुख़ाबाद ने एक प्रार्थना पत्र अपनी गवर्नमेंट को इस विषय में न्याय होने के लिये लिखा था उस पर समस्त आर्य समाजियों के हस्ताक्षर हुए पीछे विचार हुआ कि इस पत्र पर पोप धर्म सभावालों के भी हस्ताक्षर हो जावें तो अच्छा है निश्चय है कि वे लोग कर भी देवेंगे क्योंकि यह अनर्थ वास्तव्य में उन्हीं के मत पर है परन्तु विचार हीनों ने हस्ताक्षर न किये मुख्य सभासद ने वह पत्र द्वितीय सभासद के पास ले जाने को कहा द्वितीय ने तृतीय के इसी प्रकार सब पंचों ने पत्र दर्शन करके उलटा दिया एक साहब इस सभा के पंच तो पत्र देख ऐसे चौंके मानो पत्र नहीं वह सर्प

था वह पीछे हट दोनों हाथ समेट कर बोले कि मुझको इससे कुछ वास्ता नहीं चाहो हिन्दू और चाहो मुसल्मान् ॥

कहिये भ्रातृगण इसीका नाम धर्मसभा होता है यदि इस समय आर्य समाज सर्वत्र बन गये होते तो इस न्यायकारी गवर्नमेंट के भी राज्य में यवनों के हाथ से भरत खंड का धर्म बन्चना अति कठिन होजाता अब यहां और कुछ विस्तार लिखने की आवश्यकता नहीं क्योंकि हज़ारों अखबारों के द्वारा यहां से विलायत तक प्रसिद्ध होचुका है कि सब आर्य समाजों से हज़ारों रुपया चन्दा एकत्र हुआ और तीन वर्ष तक यह मुक़द्दमा आर्य समाजियों ने तन मन धन से पहुंचा कर मुसल्मानों से विजय प्राप्त की यद्यपि इस प्रबल चिन्ता में एक वर्ष से अधिक दिन व्यतीत तो हुए परन्तु भरत खंड वासियों का धर्म रहा यदि किसी प्रकार यहां मनोरथ सिद्ध न होती तो अवश्य यह मुक़द्दमा लंदन पहुंचाया जाता ॥

अब कहें सत्य धर्म रक्षक विचार शील लोग कि आर्य समाजों की स्थिति से कैसा क्या लाभ अपने देश को हुआ और होगा सैकड़ों वल्कि हज़ारों वर्ष पीछे यह एक नया ऐक्यता का उदाहरण हाथ आया ॥

मैं लिख चुका हूं प्रथम खंड के प्रथम मयूख में कि वेदों की आज्ञानुसार सर्वत्र सभाओं का नियत होना परमावश्यक है क्योंकि ऐक्यता जो देशोन्नति की भारी जड़ है वह बिना ऐसी सभाओं के ठहर नहीं सक्ती और देशोन्नति अर्थात् संसार का उपकार करना इन सभाओं का मुख्य उद्देश्य है ऐसा इन समाजों के छठे नियम में बीस्तर लिखा हुआ आपको दिखा चुका फिर यह कब हो सक्ता था

कि आर्य समाजी देश पर आती विपत्ति देख धर्म सभा वालों की
नाईं अलग होजाते और जो ऐसा करते तो उनका भी धर्म बनावटी
कहा जाता और जो धिक्कार अब मूर्ति पूजकों पर चारों ओर से पड़ र-
हा है उस से अधिक इन पर पड़ता और जब कभी आगे चूकेंगे तब
पड़ेगा भाई हिन्दू लोगो यह मुन्शीजी वाला प्रसंग कोई सामान्य बा-
त नहीं थी न जाने उस समय आप लोगों ने क्यों चूड़ी पहन लीं न-
ज्जित हो अब भी लज्जित हो और आगे को चेतो। यद्यपि प्रसिद्ध है
कि तुम्हारा उक्त धर्म सब जाल और सरासर बनावट है तथापि धु-
र्म इस नाम पर आर्य समाजी झुक पड़े हज़ार आर्य समाजियों को
जुदा समझो लाखवालों को और उनको हानि करने में अनन्त य-
त्न भी करो परन्तु वे कभी तुमसे बदला नहीं ले सके ले तो तब
जब वे तुमको संसार से बाहर समझें निश्चय रक्खो अवश्य
निश्चय रक्खो वे लोग तुमसे पेट भरू और स्वार्थी नहीं हैं वे जो
कुछ तुम लोगों के विषय में लिख कह रहे हैं वह सब तुम्हारी ही
मंगलार्थ कह रहे हैं वे तुम्हारे अत्यंत शुभचिन्तक हैं जैसे रोगी
और कुचालियों को कुपथ्य और कुचाल से रोकने वाले वैद्य मा बा-
प और मित्रादिक वैरी जान पड़ते हैं वही हाल तुम अपना और उ-
नका जानो और याद रक्खो कि जैसे वह वे कुए लड़के सिड़ी और न-
शैलों को सूधी और हित की सब बातें विपरीत सूझ पड़ती हैं परन्तु
उन्हीं दोषों के जाते पीछे वे पछताते हैं वैसे तुम लोग भी किसी दिन
शोक करोगे, देखो कितने प्रकार से तुमको सब ठीक २ हाल लिख-
समझाया पर बनेगी तब जब तुम भी कुछ सोचोगे। हे जगदीश्व-
र तू हमारे इन सब हिन्दू नामधारी भाईयों को शुद्ध बुद्धि और

सुदृष्टि दे जिस से इनको हितकी सूझे और जे अपनों को अपना समझें। बंधुगण जैसे थोड़े २ भेद के कारण होगए हैं दो दो भेद जिनके ऐसे मुसलमान और अंगरेज लोग आपस में एक दूसरे से विरोध रखकर भी स्वदेश का हित ही चाहते हैं और बाहर वालों के लिये दोनों प्रकार के यवन वा अंगरेज एक हो जाते हैं वैसा तो भी तुम बाहर वालों के लिये आर्यों के साथ अपना बर्त्ताव कर रक्खो फिर देखो कि इतने ही से कितना सुख और लाभ तुमको होता है सारांश यह है कि आर्य समाजियों के दश नियमों में से उतने नियम तुम चुन कर स्वीकार करलो जितने में प्रस्तुत जिसको तुम स्वधर्म जान रहे हो वह तुम्हारा सधा चला जावे॥ देखो गौरक्षा में सब आर्य समाजियों ने कैसा धन चन्दा करके सफल किया है और कैसे २ उत्तम नियम उस काम के प्रबन्ध के लिये बांध रहे हैं तुम लोग भी उसको परम धर्म समझते हो फिर क्या कारण है जो तुम उस काम में अपना उत्साह नहीं प्रकाशित करते और क्या कारण है जो तुम जान बूझ कर इस गौ रक्षिणी सभा में मुसलमान और ईसायों की भांति इन आर्यों से जुदे हो तमाशा देख रहे हो क्या यह बात भी तुमको लज्जित नहीं करती कहां तक कहें ऐसे अनेक कलंकों से कलंकित तुम हो रहे हो इस लिये कदापि इन आर्यों से जुदाई अलगाना तुमको शोभा नहीं देता इन कारणों से तुमको अटल दुःख भोगना पड़ेगा अतएव हे दूरदर्शी तुम्हारे परम मित्र ये आर्य लोग तुमको बारंबार चिताते हैं जब तक तुम ठीक मार्ग पर न आओगे तब तक आर्य लोग बराबर तोष तुम्हें दर्शाते रहेंगे इसका कदापि तुमको बुरा न मानना चाहिये

स्मरण रक्खो कि इन आर्य लोगों की लाभ और मुख्य कर्तव्यता की हानि उस भांति होती है जैसे किसी गृहस्थ की उसके किसी भाई व बेटा के पागल हो जाने से होती हो अर्थात् जैसे वह गृहस्थ दिन रात उस पागल की सम्हाल के कारण अपना रोज़गार हाट आदि काम यदे कुछ नहीं कर पाता केवल उसी की दुरुस्ती की चिन्ता में मग्न रहकर उसके उपाय सोचा करता है। वैसे ही ये लोग तुम्हारी चिन्ता में रहते हैं तो क्या तुमको इन का उपकार नहीं मानना चाहिये। कहाती यह है (सन्त स्तृणोत्तारण मुक्तमांगात्सुवर्णकोट्यर्पणमामनंति ।। प्राणव्यये नापि कृतोपकाराः खलाः पुनर्वैरमिवोद्वहन्ति ॥२॥) कि सज्जन लोग अपने सिर से तिनका उतार फेंकने वाले का उपकार किरोड़ सुवर्ण मुद्रा दिये के बराबर मानते हैं परन्तु दुर्जनों की लीला ही जुदी है अर्थात् वे लोग अपने ऊपर प्राणों तक खोदेने वालों से उस काम के बाद बैर ही मानने लग जाते हैं ॥

कहिये बुद्धिवान् को उक्त दो प्रकारों में से क्या करना उचित। हमने स्वनेत्रों से देखा कि एक प्रतिष्ठित आर्य सभासद ने सुना कि फलां रईस साहब की आज कुछ गड़बड़ सी हुई जाती है उसी दम कहला भेजा कि घबड़ाए नहीं मैं हाज़िर हूं फिर वैसा ही कर दिखाया हालांकि रईस साहब पूर्व से ही इनके भारी शत्रु और हिन्दू धर्म सभा के नामी खम्भ थे बल्कि सभा जब तक उन्हीं के स्थान पर हुआ करती थी ॥ परन्तु इससे क्या। समय निकल गया, लाला साहब भी कुछ घाटे में न रहेंगे परंतु उदाहरण हो गये ऐसा करना सब को उचित है परंतु वैसा कदापि कोई न करे जैसा कि उक्त रईस साहब के किसी विश्वासु निज पोप सभा के दूसरे खम्भ ने किया हालांकि बड़े भक्तों में से हैं दे-

लिये एक प्रसंग में दो उदाहरण उपस्थित हो गये जिन में से एक की निन्दा दूसरे की स्तुति सर्वत्र नगर में हो रही है ॥

आर्यगण इस प्रकार के सर्वोत्तम सर्व मान्य आर्य समाजों के नियम और उपनियम हैं कि जिन के थोड़े ही दिन के प्रचार से ऐसे सैकड़ों एक से एक बढ़कर उदाहरण वर्णन में आ सक्ते हैं जिस समय परम कृपालु श्रीमान् ने ये प्रशंसित नियम रचे थे निश्चय था कि बहुत शीघ्र हमारे सब देशनिवासी स्वीकार कर लेवेंगे और अवश्य करभी लेते परंतु बेचारों को पोप देवों ने ख़राबी में डाल रक्खा है। पोपभी क्या करें जिन पर हो पेट देव सवार ॥

भाई आर्य समाजियो भूख तो आप लाड्बों को भी लगती होगी फिर क्या वजह जो गौ रक्षा में इस प्रकार धूम धाम पर इन से नहीं किसी को कुछ काम। इस हेत इन की ओर से आंख बंद होना न चाहिये देखो परमेश्वर का नाम गो ब्राह्मण हित कर है अतः गौ और ब्राह्मण का बराबर पद है अंतर है तो केवल इतना कि वह पशु ये नर। तो अवश्य हुआ कि पशु रक्षा से मनुष्य रक्षा प्रथम की जाय (१) मनुष्यों में भी उनकी रक्षा अवश्य है जिनकी उपजीविका लिखना पढ़ना हो (२) लिखने पढ़ने वालों में से भी वे विशेष ग्राह्य हैं जिनकी सत्य विद्या में अभिरुचि हो (३) उनसे अधिक वे रक्षणीय हैं जिनकी प्रकृति निर्मल हो (४) ये सब चार प्रकार के मनुष्य हुए। प्रथम को छोड़ा तो रहे तीन, उनमें से प्रत्येक के उत्तम कनिष्ठ नाम के दो २ भेद करने से छः प्रकार हो जावेंगे इन में छुटे हुए को फिर मिला लेने से सब मनुष्य सात दर्जों में हो जावेंगे उनमें से जिन्हें पेट देव सता रहा हो उनकी रक्षा अवश्य मेव होनी चाहिये

उसका उपाय भी सोचा जावे और वह यथा योग्य अर्थात् जैसे को वैसा हो इन दिनों लिखने पढ़ने वालों को कहीं २ कुछ २ सुबीता है परन्तु नहीं है तो उनका जिनको भिक्षुक वृत्ति कहते हैं। उनके लिये कर्म उपासना और ज्ञान इन तीनों कांडों के साधक छोटे बड़े सत्य धर्म प्रचारक ग्रन्थ बनवा कर विज्ञापन दिये जावें कि इस बरस में वा सदैव चैती श्रावणी और कार्तिकी को तीन बार नीचे लिखे मुल्कों में भिक्षुक ब्राह्मणों की परीक्षा होगी जो उसमें उत्तीर्ण (कामयाब) होंगे उनको इस २ प्रकार पारितोषक (इनाम) और सनद मिलेगी और फिर सनद वालों से आर्य लोग अपने यहां वेद विहित १६ षोडश संस्कार और होम हवनादिक कर्मों का काम लेवेंगे और मिठाई भी खिलावेंगे, यथा कार्य दक्षिणा भी होगी- सनद वाले ब्राह्मण लोग स्वयं भी शुद्ध पवित्र और सत्य परायण रह कर दोनों काल संध्या बंदनादि नित्य और नैमित्तिक तथा उक्त संस्कारादि कर्म सदैव प्रीति पूर्वक करते रहें वे जावें ऐसा न हो कि बजाई ढोलक और कई पसनी का मुड़ना ॥

ऐसे अनेक काम उनके लिये आर्य लोग सोचें और उनका सन्मान प्रतिष्ठा उनकी योग्यतानुसार करें जिस्से उनका चित्त शांत हो और वे दुर्गा सप्ताह और सत्य नारायण आदि कथाओं को भूलें और आप के समाजों को सराहें। ऐसा होने से एक लड़ाई फतें की कहावत होगी अर्थात् सुपाय और पुरुषार्थ दोनों सधेंगे। अन्यथा आप लोग कुछ नहीं कर सकोगे सदा विघ्न ही होता रहेगा और सुख के बदले सदैव औंधा झूल रह कर यही कहोगे कि हाय बड़ा तेरा सिर मारा पर इन दुष्टों के आगे दाल नहीं गलती। इस लिये

वह काम कीजिये जिस्में आप की दाल गले- कदाचित कहो मान
और गौरव उन्हीं का किया जाता है जिनके गुण और काम वैसे हो
ते हैं ये लोग तो बड़े ही कृत्रिमी और मिथ्यावादी हैं। ब्रह्मजा ना-
ति ब्राह्मणः। ब्राह्मण वह जो ब्रह्म अर्थात् वेद वा ईश्वर को जाने
सो यह कहना आप लोगों का बहुत ठीक परन्तु कहिये तो सही कि
स्वदेश में ऐसी कौनसी पवित्र जाति रही है जो अपने रोज़गार में
इन दोषों से लिप्त नहीं और जो कहा कि "ब्रह्मजानाति ब्राह्मणः"
सो ऐसी व्युत्पत्ति क्षत्रिय आदि शब्दों की भी है जैसे "क्षतात् त्रा-
यते सो क्षत्रियः" अर्थात् क्षत्रिय वह जो सब को दुःखों से बचावे
जब ऐसा कोई क्षत्रिय भी नहीं दिखाई देता और न कोई अन्य जाति तो
फिर केवल ब्राह्मणों पर ही लक्षण करनी व्यर्थ है अभी तो अपना
सब देश ही बिगाड़ में है सब के संग ये भी सुधर रहेंगे फ़िलहाल इन-
की नींद चौंकने दो, और आप उनके भूख की फ़िकर करो क्योंकि भूखा
सिवाय पाप और कुछ नहीं कर सक्ता ऐसा अनुभव है और कहा भी
है "बुभुक्षितः किन्न करोति पापं" अर्थात् वह कौन पाप है जिस
को भूखा नहीं करता। अब कहोगे कि आपने बहुत ठीक सिद्ध कि-
या परन्तु क्या करें ऐसों के पालने और मानने में स्वामीजी की आ-
ज्ञा नहीं पाई जाती। वाहजीवाह। यह तो आपने ख़ूबही कहा।
भाई आर्यो कभी स्वामीजी महाराज का ऐसा विचार ध्यान में मत ला-
ओ। मैं लिख चुका हूं प्रथम खंड के द्वितीय मयूख में कि श्रीजी म-
हाराज का मथन हेतु यही था कि ये समझें और इनको पूरी लाभ हो
तथा इन्हीं के द्वारा सारी सृष्टि सुधरे परन्तु "ओतिकूले हरी कां
ला हरां नाप्नोति वै सृगाल" अर्थात् हर रुठे तो क्या बाक़ी

रहे। सो भावर्द इनकी ने इनको सुपथ न लगने दिया। नहीं तो नमा लूम अवलों इनमें से कौन कैसे गुणवान व धनवान न हो जाते अस्तु ,, गतं न शोचामि ,, अब से ही सही। बस भाई ब्रह्मवर्ग, मैं बहुत कुछ आपकी ओर से वकालत कर चुका और इस वक्त आप को डिग्री भी दिलादी लेकिन बशर्त नेक चलनी आपकी यह रियासत क़ायम रहेगी वर्नह मिसल मल्हारि राव गायक वाड़ के ज़ब्त व क़हरन् बेदख़ल कर दिये जाओगे इस लिये आपका शुभचिन्तक आप सबको प्रथक २ हाथ जोड़ बार बार नमस्कार पूर्वक प्रार्थना करता है कि आप लोग अपने २ पुराने आदि पुरुषों का नाम अर्थात् गोत्र (ख़ान्दान) एक बार याद कीजिये और फिर विचारिये कि वे कैसे थे और उनकी सन्तान हम कैसे हैं और उनकी कृति वा आचरण क्या थे और हमारे क्या हैं तो आपको निश्चय हो जावेगा कि धरती और आस्मान का अंतर है केवल इसी कारण कि वे जिस शुद्ध सनातन वैदिक मार्ग पर चलते थे आप नहीं चलते। फिर कहिये आपका मान गौरव और प्रतिष्ठा वैसी क्यों कर हो सक्ती है जैसी कि आप चाह रहे हो। भला बिना गुड़ आदि ना तृप्त पदार्थ के कभी किसी ने शर्बत कर पिया है कभी नहीं कभी नहीं तो बस अब आप लोग वृथा बंचित न होकर आगे लिखी ग्रन्थनामावली को देख प्राचीन ग्रन्थों का प्रचार एक साथ उठा कर मान्य ग्रन्थों को देख भाल यति तूर्ण मर्वोरा कीजिये जिससे कामना चतुष्टय आपके मुष्टिगत हो जावे ॥ नरजन्म पाकर जिसने सत्या सत्य विचार न किया वह आत्मघातक है संसार में किसी का आत्मा असत्य नहीं है चोर चुराकर चोरी करता है और किसी ने अपना

भेद नहीं कहता परन्तु मन में चोरी करना सदैव क़बूलता रहता है। ऐसे सत्य स्वरूप आत्मा को जो असत्यों में सानता है वह उत्तमोत्तम भोजन को हलाहल मिला कर खाता है इस प्रकार रसमें विष मिलाना कभी किसी बुद्धिमान् को उचित नहीं सदैव सबको अपने सत्य स्वरूप आत्मा को सब सत्य कामों से युक्त रखना चाहिये अर्थात् सत्य कहे सत्य सुने सत्य करे सत्य पढ़े और सत्यही को माने और पूजे। देखो जैसी कि धर्मकी ग्लानि अब देखते हो वैसी कोई तेरह सौ वर्ष से अधिक दिनों की बात है जब भी होगयी थी उन्हीं दिनों परमहंस परि व्राजकाचार्य श्रीमान् स्वामी शंकराचार्यजी महाराज ने वैदिक धर्मको फिर कर स्थापित करने के लिये बड़ा परिश्रम उठाया था परंतु परम शोक बात यह हुई कि वे पूर्णायु न हुए अर्थात् केवल ३२ वर्ष की आयु में चल बसे इसी से उनके पीछे जल्दही फिर वैदिक मार्ग में गड़ बड़ा चौथ पड़ गई अर्थात् जिन मिथ्या मतों का उन्होंने खंडन किया था वे सब फिर हरे होगये और बहुत से रामानुजी वल्लभकुली आदि मत और नए उत्पन्न हुए उन सब पूर्वापरों का नाम आगे देख मिलेगा जिन दिनों श्रीमान् स्वामी शंकराचार्य जी महाराज खंडन मंडनादि में प्रवृत्त थे उन दिनों अबकी अपेक्षा बहुत सी बातों का सुबीता था प्रथम तो यह कि इस देशमें ईसाई व यवनादिकों का कहीं कुछ दख़ल न था दूसरे सब राजालोग स्वदेशी थे उनमें से बहुत से आचार्यजी के सहायक थे तीसरे इस देश निवासियों में इस प्रकार झूठ जाल फंद फ़रेब और पक्षपात न था जैसा कि अब देखा जाता है उस समय यदि कोई मतवादी हार पीछे हठ वा दुराग्रहादि से उपदेश नहीं मानता था उसको राजशासना

छोड़ते थे ऐसा प्रबंध था॥ सारांश वह समय ऐसा था कि जहां उक्त आचार्यजी पहुंचे तहां उन्होंने लोगों को उपदेश किया जिसमें जितना पाण्डित्य हुआ उतनो उसने आचार्यजी महाराजसे बहस की जब न चल सका तब गिड़ गिड़ा कर उसी वस चरणों में गिर पड़ा और तुरंत सत्य मार्गावलम्बी हुआ ऐसा लेख शंकर दिग विजय में सर्वत्र है उसकी एक कथा यहां भी आगे उदाहरणार्थ लिखी है उक्त ग्रन्थ सबका सब संस्कृत में है परंतु कथा की भाषा भी लिख दी है॥

आर्यगण देखिये वह उदाहरण कैसा चित्त को समाधान पहुंचाता है अर्थात् उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि श्रीमान् स्वामी शंकराचार्यजी महाराज और श्रीमान् स्वामी दयानन्दजी महाराज के कामों में तिल मात्र की कमी वा बेशी नहीं है परन्तु हाय समय में तो धरती आकाश का सा अंतर हो गया उस समय जहां लोगों को अपनी बात मिथ्या समझी और वे तुरन्त शरण हुए फिर जो कहा वह किया और अब का विपरीत हाल तो सब प्रसिद्ध ही है यह सब खराबी केवल सत्य विद्या न होने के कारण हो रही है सो अब उस विद्या की पहिन्चान के लिये वेदादि सब सत्य शास्त्रों और ग्रन्थों के नाम लिखे जाते हैं॥

मनुष्य लोग वेदार्थ जानने के लिये अर्थ योजना सहित व्याकरण अर्थात् अष्टाध्यायी धातुपाठ उणादिगण गणपाठ महाभाष्य। शिक्षा कल्प निघंटु निरुक्त छंद और ज्योतिष। ये छः वेदों के अंग, मीमांसा वैशेषिक न्याय योग सांख्य और वेदांत। ये छः शास्त्र जो वेदों के उपांग। अर्थात् जिनसे वेदार्थ ठीक

जाना जाता है तथा ऐतरेय[1] शतपथ[2] साम[3] और गोपथ[4]। ये चार ब्राह्मण, इन सब ग्रन्थों को क्रम से पढ़ के अथवा जिन्होंने उनसम्पूर्ण ग्रंथों को पढ़ के जो सत्य २ वेद व्याख्यान किये हों उनको देख के वेद का अर्थ यथावत् जान लेवें क्योंकि (नावेदवित्) वेदों को नहीं जानने वाला मनुष्य परमेश्वरादि सब पदार्थ विद्याओं को अच्छे प्रकार से जान सकता और जो २ जहां २ भूगोलों वा पुस्तकों अथवा मनमें सत्य ज्ञान प्रकाशित हुआ है और होगा वह सब वेदों में से ही हुआ है क्योंकि जो २ सत्य विज्ञान है सो २ ईश्वर ने वेदों में धर रक्खा है इसी के द्वारा अन्य स्थानों में भी प्रकाश होता है और विद्या के बिना पुरुष अंधे के समान होता है इससे सम्पूर्ण विद्याओं के मूल वेदों को बिना पढ़े किसी मनुष्य को यथावत् ज्ञान नहीं हो सक्ता इसलिये सब मनुष्यों को वेदादि शास्त्र अर्थ ज्ञान सहित अवश्य पढ़ने चाहिये ऐसी आज्ञा श्रीमान् जगद्गुरु श्री स्वामीजी महाराज की सब मनुष्यों के वास्ते है जिनको अपने श्रेय की पूर्ण इच्छा होवे शीघ्र स्वीकार करें॥

विदित हो कि मन्त्रभाग की चार संहिता कि जिनका नाम वेद है वे सब स्वतः प्रमाण (६) कहे जाते हैं और उनसे भिन्न ऐतरेय ब्राह्मण आदि जो प्राचीन सत्यग्रन्थ हैं वे सब परतः प्रमाण के योग्य हैं तथा ग्यारह सौ सत्ताईस (११२७) चारों वेदों की शाखा भी वेदों के व्याख्यान होने से परतः प्रमाण तथा (आयुर्वेद) अर्थात्

नोट (६) जिन ग्रन्थों के आशयों पर दूसरे ग्रन्थों का साक्षित्व अर्थात् गवाही नहीं चाहने पड़ती वे स्वतः प्रमाण और जिनपर वेदों का साक्षित्व होना अवश्य है वे परतः अप्रमाण कहाते हैं॥

जो वैद्यक शास्त्र चरक सुश्रुत और धन्वन्तरिकृत निघंटु आदि ये सब मिलकर ऋग्वेद का उपवेद कहाता है (२ धनुर्वेद) अर्थात् जिसमें शास्त्र अस्त्र विद्या के विधान युक्त जोकि अंगिरा भरद्वाजादि कृत संहिता हैं जिनमें राज विद्या सिद्ध होती है परंतु वे ग्रंथ प्रायः लुप्त से होगए हैं। जो पुरुषार्थ से इसको सिद्ध किया चाहे तो वेदादि विद्या पुस्तकों से साक्षात् कर सकता है॥

(३ गंधर्ववेद) जोकि सामगान और नारदसंहिता आदि गान विद्या के ग्रन्थ हैं (४ अर्थवेद) अर्थात् शिल्पशास्त्र जिसके प्रतिपादन में विश्वकर्मा त्वष्टा देवज्ञ और मयकृत संहिता रचीगई हैं येचारों (उपवेद) कहाते हैं॥

इसी प्रकार पहिला पाणिन्यादि मुनिकृत ग्रन्थ (शिक्षा) और दूसरा मन्वादिकृत मानवकल्पसूत्रादि आश्वलायनादिकृत श्रौतसूत्रादि (कल्प) और तीसरा पाणिनि मुनिकृत अष्टाध्यायी धातुपाठ गणपाठ उणादिपाठ और पतंजलि मुनिकृत महाभाष्य पर्यंत (व्याकरण) तथा चौथा यास्क मुनिकृत निरुक्त और निघंटु (निरुक्त) और पांचवां वसिष्ठमुनि आदिकृत सूर्यसिद्धांत आदि रेखा बीज गणितात्मक (ज्योतिष) और छठा पिंगलाचार्यकृत सूत्रभाष्य आदि (छंद) ये वेदों के छः अंग भी परतः प्रमाण के योग्य हैं और ऐसेही वेदों के छः उपांग अर्थात् जिनका नाम षट्शास्त्र है उनमेंसे एक व्यासमुनि आदिकृत भाष्य सहित जैमिनि मुनिकृत पूर्वमीमांसा जिसमें कर्मकाण्ड का विधान और धर्म धर्मी दो पदार्थों से सब पदार्थों की व्याख्या की है दूसरा वैशेषिक शास्त्र जोकि कणाद मुनिकृत सूत्र और गोतममुनिकृत प्रशस्तपाद भाष्यादि-

व्याख्या सहित है तीसरा न्यायशास्त्र जो कि गोतममुनि प्रणीत सूत्र और वात्स्यायन मुनिकृत भाष्य सहित है चौथा योगशास्त्र जो कि पतंजलि मुनिकृत सूत्र और व्यास मुनिकृत भाष्य सहित है पांचवां सांख्यशास्त्र जोकि कपिल मुनिकृत सूत्र और भागुरिमुनि कृत भाष्य सहित है और छठा वेदान्तशास्त्र जोकि ईश केन कठ प्रश्न मुण्डक माण्डूक्य तैत्तिरीय ऐतरेय छान्दोग्य और बृहदारण्यक ये दस उपनिषद तथा व्यास मुनिकृत सूत्र जोकि बौधायन इत्यादि व्याख्या सहित है ये छः वेदों के उपांग कहाते हैं इसका यह अभिप्राय है कि जो शाखा शाखान्तर व्याख्या सहित चार वेद चार उपवेद छः अंग और छः उपांग हैं ये सब मिल के चौदह विद्या के ग्रन्थ हैं ॥

इन ग्रन्थों का तो पूर्वोक्त प्रकार से स्वतः परतः प्रमाण करना सुनना और पढ़ना सबको उचित है इनसे भिन्नों का नहीं क्योंकि जितने ग्रन्थ पक्षपाती क्षुद्र बुद्धि कम विद्या वाले अधर्मात्मा असत्य वादियों के कहे वेदार्थ से विरुद्ध और युक्ति प्रमाण रहित हैं उनको स्वीकार करना योग्य नहीं आगे उनमें से मुख्य २ मिथ्या ग्रन्थों के नाम भी लिखते हैं जैसे रुद्रयामल आदि तंत्र ग्रन्थ ब्रह्मवैवर्त्त और भागवत आदि पुराण। सूर्यगाथा आदि उपपुराण। [illegible] के सप्तश्लोकी और उससे अन्य सब स्तोत्र ग्रन्थ। व्याकरण विरुद्ध सारस्वत चन्द्रिका कौमुद्यादि ग्रन्थ। धर्मशास्त्र विरुद्ध निर्णयसिन्धु आदि ग्रन्थ। तथा वैशेषिक न्यायशास्त्र विरुद्ध तर्कसंग्रह मुक्तावल्यादि ग्रन्थ तथा हठप्रदीपिका आदि ग्रन्थ जोकि योगशास्त्र से विरुद्ध हैं। तथा सांख्यशास्त्र विरुद्ध सांख्यतत्त्वकौमुदी आदि ग्रन्थ वेदान्त

शास्त्र विरुद्ध वेदान्तसार पञ्चदशी योगवासिष्ठादि ग्रन्थ। तथा ज्योतिषशास्त्र से विरुद्ध मुहूर्तचिन्तामण्यादि मुहूर्त जन्म पत्र फलादेश विधायक पुस्तक। ऐसेही श्रौत सूत्रादि विरुद्ध त्रिकंडिका स्नान विधायकादि सूत्र। तथा मार्गशीर्ष एकादश्यादि व्रत काश्यादि स्थल पुष्कर गंगादि जल यात्रा, माहात्म्यविधायक सब पुस्तक तथा दर्शन नामस्मरण जड़मूर्तिपूजा करने से मुक्ति विधायक ग्रन्थ। इसी प्रकार पाप निवारण विधायक, और ईश्वर के अवतार वा पुत्र अथवा दूतोत्पादक, वेद विरुद्ध शैव शाक्त गाणपत वैष्णवादि मत के ग्रन्थ, तथा नास्तिक मत के पुस्तक और उनके उपदेश ये सब वेद युक्ति प्रमाण और परीक्षा से विरुद्ध ग्रन्थ हैं। इसलिये सब मनुष्यों को उक्त अशुद्ध ग्रन्थ त्याग कर देने के योग्य हैं॥

कदाचित् इन ग्रन्थों के विषय में कोई ऐसा प्रश्न करे कि इन असत्य ग्रन्थों में भी जो २ सत्य बातें हैं उनका ग्रहण करना चाहिये तो इसका उत्तर यह है कि जैसे अमृत तुल्य अन्न में विष मिला हो तो उसको छोड़ देते हैं क्योंकि उनसे सत्य ग्रहण की आशा करने से सत्यार्थ प्रकाशक वेदादि ग्रन्थों का लोप हो जाता है इसलिये इन सत्य ग्रन्थों के प्रचार के अर्थ उन मिथ्या ग्रन्थों को छोड़ देना अवश्य चाहिये क्योंकि बिना सत्य विद्या के ज्ञान कहां। बिना ज्ञान के उन्नति कैसी और उन्नति के न होने से मनुष्य सदा दुःख सागर ही में डूबे रहते हैं॥ इत्याक्षेपः

अथ शांकरदिग्विजयोदाहरणम्

तस्मादनन्तशयनं नाम भगवदर्च्चामूर्तिसन्निहितप्रदेशं संप्राप्तः
तद्दैव दर्शनं कृत्वा निजशिष्यैर्मासपर्य्यन्तमास तत्र भक्ता भागवता
श्चैव वैष्णवाः पाञ्चरात्रिणः। वैखानसाः कर्म्महीनाः षोढ्वा वै-
ष्णवाः मताः॥ क्रियाज्ञानविभेदेन एवद्वाद प्राभवन्। तानाह शङ्क
राचार्य्यः किंवोलक्षणमुच्यतां॥ आदौ भक्ता इद मूचुः। स्वामिन्
वासुदेवः परमपुरुषः सर्व्वेशो जगदवनपरः सर्व्वज्ञः सर्व्वदेवकार
णः स एव रामकृष्णाद्यवतारविभेदेन भूभारं निवर्त्तयितुं प्रादुर्भवन
मपि प्राप्य संहारं चकुर्व्वन् पुण्यस्थलेषु निजाविर्भूतमूर्तिप्रतिष्ठा
मा चकार। मूढावयं किल तदीयपादपङ्कजसेवया विगतपापास्त
ल्लोकवासं प्राप्स्याम इति निश्चयबुद्ध्या कौण्डिन्यमुनेः प्रसन्नो वि-
ष्णुरनन्तनाम्ना किला नैव वर्त्तते, तदीयचरणमेवदिनमनुदिनं कृत्वा
तीर्थप्रसादादिभिस्तद्धिम्मेत्थं गोपुरप्राकारादिषु सम्मार्जनप्रोक्षणादि-
[illegible] कुर्व्वन्तो वसामः। शङ्खचक्राङ्कितानेतान् सर्व्वान् प्रसमुद्भवा
[illegible] पुण्ड्रधरान् भक्तान् नत्वाधिक्रुधे [illegible]॥ ज्ञानमूलमिदं ज्ञा
[illegible] ह्यान्हिकं चोदितं॥ नित्यकर्म [illegible] मिव प्रति
[illegible] किं [illegible] द्विविधः
ज्ञान क्रियाभेदात्। ज्ञानिनो वयं विष्णु धर्म्मोदिताः परे कर्म्मिणः ब्रह्म
[illegible] श्रीमदनन्तभक्ताः [illegible] विष्णु धर्म्मे वचनं
[illegible] शङ्कराचार्य्यस्तान् [illegible] ज्ञानिनः किल ज्ञा
नस्य किं वा लक्षणं तेन फलमपि किं [illegible] विष्णु धर्म्मोक्त श्री मद-
नन्तभगवत्पाद कमल सेवा [illegible] सर्व्वस्यापि च

स्नानं तदनुस्तां विना त्वशाचल नर्मापि न भवतीति, तमाचार्यो ऽब्रवीत्
मूढ विष्णु शर्म्मन् ।
"जन्मना जायते शूद्रः कर्म्मणा जायते द्विजः ।" इत्याश्रम धर्म्मानुकूलं
कर्म सर्व्वेषा मलंघ्यं तस्यैव तपः शब्द वाच्यत्वात् सन्यासि नामपि
विहितं कर्म कर्त्तव्य मेव "कर्म्म हीने तु पातित्यमिति दर्शनात्"
अहरहः सन्ध्यामुपासीत, उदिते सूर्य्ये प्रातर्जु होति, उद्यन्त मस्तं
यान्त मादित्य मभिध्यायन् कुर्व्वन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नु
ते ऽसावादित्यो ब्रह्मेति ब्रह्मैव सद्ब्रह्माप्येति य एवं वेद ॥ इति
च, सर्व्वे वेदा ब्राह्मणो चितं नित्य कर्म्म प्रशंसन्ति श्रौतस्मार्तादि
कं यतः कर्म्मार्थ मेव श्रुति प्रवृत्तिः अतः सर्व्वे राश्रमिभिः यदोक्तं
कर्म्म अवश्यं कर्तव्यमेव । जीवन् कर्म्म परित्यागंयः करोतिनरा
धमः । सम्मूढो नरकं याति यावदाहूतसंप्लवं ॥ इति मनुवचनदर्शना
त् देवार्च्चन स्नान भिक्षा चार्य्यादिकं कर्म्म यतीनाञ्च विहित मेव । शौ
चा चमन स्नान सन्ध्यावन्दन जपाग्नि होत्र स्वाध्याय माध्यान्हिक
देवातिथि पूजादिकं कर्म वान प्रस्थ गृहस्थ योस्तुल्य मेव वनस्थ
स्येयान् किलविशेषः तपोनानशनात्परमिति, ब्रह्मचारिणस्तु स्ना
न सन्ध्या स्वाध्याये श्वर पूजागुरु कुल वासादिकं कर्म उचितं अतः
स्वकर्म्म भ्रष्टानां भवतां ब्राह्मण्य हानि प्रसक्तिः स्यात् । किन्त्व स्मा
नभार्गे वर्तिनो यदमिति भवद्भि रुक्तं तत्राप्यधिकारो नास्त्ये वयद्य-
स्ति तर्हि सद सद्लक्षणं ब्रह्मनाडी विभेदनं चित्परामर्शभावंमद् व-
क्तव्यांच दर्शयध्वं । एव माचार्य्यै रुक्ते विष्णु शर्म्मादयः इद मूचुः
यतिनाथ अयहर्म्ये स्नानं चोभय मेवास्माभिर्व्विहितं त्रिकाल मनन्त
देव पाद दर्शनं विना नाकिञ्चिदिति, तद्वचः श्रुत्वा सम्भूता-

अथर्च्च श्रीशङ्कराचार्य्य इदमाह, विष्णुशर्म्मन् कतिपयैर्व्वैरे वीश्यति:
सन्नाह, मत्सदृशः सप्तमः पुरुषः तत्पिता किञ्चित्कर्म्म शील इति
वार्त्ता मया श्रुतं। तन्निशम्य कोपा श्चर्य्यो भयात्मक मनसः सकल
गुरुराह। हे व्रात्य सकल धर्म्म बहि ष्कृ द्दूर दूरव्रजेति त्वत् संसर्गा-
दस्माकं दोषो भवेदिति विष्णु शर्म्माण मवादीत् सतु क्लेशपरितप्त मा-
नसः सगणः समस्तामपराधं क्षमस्वेति दण्डवत्प्रणम्य सम्मुखीन
कर स्थ्य: स्थाणु वत्स मातिष्ठत्। विष्णु शर्म्माभिरूप मेनं शरणाग-
तं दुर्म्मार्गात् क्षमो वयमिति धिया सगणस्य तस्य प्रायश्चित्त कार-
णे हस्तामल कादीन्निज शिष्यान् आज्ञापया मासते विष्णु शर्म्म मु-
खाना स्नान प्रह्लदराङ समर्पण मुण्डन सहस्र घट स्नान शाल ग्रा-
मा पत्य कृच्छ्र माद्यौदी च्याङ्ग गोदान भूप्रायन गोगर्भज्ञ नना
नकर्म्म नाम करण चौलोप नयन विवाह प्रमुखकर्म्माणि यथा विधि
समाचरन्त। विष्णु शर्म्मादयोः पिधिविहित ब्राह्मणानुष्ठान तत्पराः
श्रीपरमगुरु मिदमूचुः। स्वामिन् भवन् कृपया ब्राह्मणाय सि-
द्धि रसीत्। मोक्षसिद्धिः केनोपायेन नो भविष्यतीति जल्पन्त
विष्णु शर्म्माण मिदम ब्रवीत् कुरुता मेव वैदिकी क्रिया-
मिति॥

अथ भाषार्थ

जब श्रीमान् स्वामी शंकराचार्यजी महाराज घूमते २ अनन्तशयन
नाम स्थानमें पहुंचे तो वहां बारह प्रकार के वैष्णव लोग जिनमें
से छः क्रियाभिमानी और छः ही ज्ञानाभिमानी थे देखे गये उन-
से स्वामीजीने कहा कि तुम अपना धर्म लक्षण कहो बोले कि स्वा-
मीजी महाराज जो सर्वेश जगत् पालक परमेश्वर राम कृष्ण

आदि अवतार लेकर धरती का भार उतारता है वह कौंडिन्य मु-
नि की तपस्या से होकर उनकी इच्छानुसार इस पुण्य क्षेत्र में
अनन्त नाम की पाषाण मूर्ति बनकर वास करता है हम लोग
प्रति दिन उसके चरणों में प्रेम रख उसका चरणोदक और प्रसा-
द पाय अति स्वच्छ हो उसके मन्दिर की भार पोंछ कर के पाप रहित
होते रहते हैं यही हमारा परम धर्म कर्म है स्वामीजी ने कहा कि
तुम लोग ब्राह्मण हो परन्तु आचार तुम्हारा प्रमाण हीन अर्थात्
वेद विरुद्ध है वे बोले कि नहीं हम विष्णु शर्मादिक ज्ञानी हैं ह-
मको आचार की आवश्यकता नहीं आचारी लोग ब्रह्म गुप्तादि-
क हमसे जुदे यहीं बसते हैं यह सुन स्वामीजी बोले कि तुम ज्ञानी
लोगों में जो बड़ा विद्वान् हो वह कहे कि ज्ञान का क्या लक्षण है
तब विष्णु शर्मीजी बोले कि ज्ञान हमारा यह है कि हे अनन्त
भगवन् हम आपके चरणों में शरण हैं आप की बिना आज्ञा कु-
छ भी नहीं होता सु हमको तार ऐसा बार बार कह कर चुप र-
हना यही हमारे परम ज्ञान का लक्षण है तब स्वामीजी बोले
कि अरे मूढ़ विष्णु शर्मा कर्म से द्विजत्व होता है पश्चात् सबको
वर्णाश्रम धर्म मुख्य है कर्म हीनों को शूद्रत्व वेदों में लिखा है
ब्राह्मण लोग उदय और अस्तकाल के समय प्रति दिन संध्या वं-
दन करके आहुति देवें इस प्रकार ब्राह्मणों को श्रुति और स्मृ-
ति के अनुसार वर्णाश्रम धर्म करना मुख्य है जो लोग कर्म
छोड़ते हैं वे मूढ़ नरधम कल्पभर नरक में पड़ते हैं ऐसा
मनुजी का वचन है इसलिये कभी किसी वर्ण और आश्रम
वाले को कर्म का त्याग नहीं करना चाहिये दान सत्य और

ग्रहस्थों की शौच आचमन स्नान संध्यावंदन जप अग्निहोत्र वेदा ध्ययन माध्यान्हिक देवअतिथि पूजा और ब्रह्मचर्यको स्नान संध्या वेदाध्ययन ईश्वर पूजा गुरुकुल में वास इसी प्रकार सन्यासियों कोभी देवार्चन स्नान भिक्षादिक कर्म करना अवश्य है इससे तुम लोग कर्म त्याग करने के कारण ब्राह्मणत्व से पतित होगये ज्ञान भी तुम को कुछ नहीं है वृथा हम ज्ञानी हैं ऐसा तुमको अभिमान है यदि तुम ज्ञानी हो तो हमको सत् असत् कालक्षण ब्रह्म नाड़ी भेद चित्य सामर्थ्य षट् चक्र मार्ग का विस्तार प्रमाण सहित सुनाओ तब विष्णु शर्मा जी बोले कि यतिनाथ हम अपना ज्ञान और कर्म प्रथमही सुना चुके कि त्रिकाल अनन्त देवका दर्शन करने के सिवाय संसार में कुछ नहीं जानता। तब हंस कर स्वामीजी बोले कि कितनी बरसों से तुम्हारा यह हाल है बोले कि स्वामीजी मेरी सात पीढ़ी से यही रीति चली आती है हां हमारा आठवां कोई पुरषा सुना है कि कुछ आपने कहे से कर्म करता था इतना सुनते ही स्वामीजी क्रोध में भर आये और आश्चर्य में तो थे ही बोले कि अरे संस्कार हीन चांडाल शीघ्र मेरे सन्मुख से हट जा तेरे संसर्ग से हम भी दोषी होंगे यह सुन जितने वे विष्णुशर्मादिक वैष्णव थे सब अति दुःखित होकर के सबके सब स्वामीजी के चरणों में गिर पड़े और कहने लगे कि हे स्वामिन् हम लोगों का अपराध क्षमा कीजिये फिर उठ हाथ जोड़ अति दीन दुःख मलीन नैनों से जल बहा ते सबके सब हाथ जोड़े खड़े हो रहे कि उन लोगों के हटाये जाते थे पर नहीं हटते थे बार बार क्षमा कीजिये कहते भूमि भर रहे थे तब स्वामीजी को करुणा उत्पन्न आई अपने शिष्य हस्तामलकादिकों से

बोले कि अच्छा तुम इन सबको यहांसे लेजाकर अच्छे प्रकार प्रायश्चित्त दो उसी समय वे उनको ले गये और प्रथम उनको सचैल स्नान कराकर उनसे ब्रह्म दंड ले फिर उनकी मूंछ मूड़ मुड़वाकर सकल को हजार घोड़ों से न्हिलाय उनसे शौ सौ प्राजा पत्य व कृच्छ्र चांद्रायणादि व्रत और प्राच्याङ्ग उदीच्याङ्ग गोदान भूपायन गोगर्भजनन जातकर्म नाम करण चोल उपनयन विवाह आदि संस्कार यथाविधि करा कर परम गुरू के सन्मुख एक दिन लाये आतेही वे सब विष्णु शर्मादिक वैष्णव आचार्यजी महाराजके चरणों में गिरपड़े और हाथ जोड़ कर बोले कि महाराज आपकी कृपा से हमको ब्राह्मणकर्म का अधिकार तो हुआ अब कृपा करके ऐसा उपदेश कीजिये जिस से हमको मुक्ति प्राप्त हो तब परम कृपालु श्रीमान् स्वामी शंकराचार्य जी महाराज उनका प्रेमभाव देख प्रसन्न हुए और उनको प्रत्यह त्रिकाल वेदोक्त नित्य नैमित्तिक वर्णाश्रम के कर्म करते रहने का उपदेश किया ॥ इति शंकर दिग्विजये वैष्णव मत. निबर्हणम्

इस प्रकार श्रीमान् शंकराचार्यजी महाराज ने नीचे लिखे छद्म मतों का खण्डन करके वैदिक मत पर चलने का उपदेश किया है ॥ (१) भागवत मत (२) षड्विध वैष्णव मत (३) पंचरात्रागम मत (४) वैखानस मत (५) कर्महीन वैष्णव मत (६) हैरण्य गर्भ मत (७) अग्निवादि मत (८) सौर मत (९) महागणपति मत (१०) हरिद्रा गणपति मत (११) नवनीत गणपति मत (१२) उच्छिष्ट गणपति मत (१३) स्वर्ण संतान गणपति मत (१४) शाक्ति

मत (१५) महालक्ष्मी मत (१६) वाग्देवता मत (१७) वामाचार मत (१८) कापालिक मत (१९) कापालिकैकदेशी मत (२०) चार्व्वाक मत (२१) सौगत मत (२२) जैन मत (२३) बौद्ध मत (२४) मल्लारि मत (२५) विष्वक्सेन मत (२६) मन्मथ मत (२७) कुबेर मत (२८) इन्द्र मत (२९) यम मत (३०) वरुण मत (३१) शून्य मत (३२) लोक मत (३३) गुण मत (३४) साङ्ख्य मत (३५) योग मत (३६) पीलुवाद मत (३७) कर्म्म मत (३८) चन्द्र मत (३९) राहु मत (४०) क्षपणक मत (४१) पितृ मत (४२) शेष मत (४३) सिद्ध मत (४४) गंधर्व मत (४५) भूत वैताल मत (४६) गारुड़ मत

आर्यगण यद्यपि यह शंकरविजय पोपों ने ही बनाया है तथापि खोजने वाले बहुत सा सत्य निकाल सक्ते हैं

अब उन आधुनिक मतों के नाम सुनिये जिनका खंडन श्रीमान् सकलविद्यानिधान परमाचार्य स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज ने किया और कर रहे हैं और बराबर करते रहेंगे॥
(१) श्रीवैष्णव वा रामानुजी (२) वल्लभाचारी वा गोकुलिया गुसाईं वा गोकुलस्थी (३) सनकादिकी वा माध्व वा मध्वाचारी वा निंबार्की (४) रामानन्दी वा रामावत (५) राधावल्लभी वा गौड़ गुसाईं (६) नित्यानन्दी वा चैतन्यी वा बंगाली वैष्णव (७) सधनापन्थी (८) कबीरपन्थी (९) नान्हकपन्थी (१०) दादूपन्थी (११) खाकी (१२) बैरागी (१३) नागा (१४) मूलकदासी

(१५) रैदासी (१६) चरणदासी (१७) सैनाई (१८) मीरांबाई (१९) सखीभाव (२०) माधवी (२१) हरिश्चन्द्री (२२) योगी (२३) जंगम (२४) ऊर्ध्वबाहु (२५) आकाशमुखी (२६) नखी (२७) गूदड़ (२८) रूखड़ (२९) सूखड़ (३०) कड़ालिंगी (३१) शाक्तिक (३२) दक्षिणाचारी वा दक्षिणी (३३) वामी वा वामाचारी वा वाममार्गी वा कौल आदि (३४) कानचेली (३५) करारी (३६) अघोरी (३७) गाणपत्य (३८) सौर (३९) नानकशाही (४०) प्राणनाथी (४१) साधु (४२) सत्तनामी (४३) शिवनारायणी (४४) शून्यवादी (४५) जैनी (४६) दिगम्बर (४७) श्वेताम्बर (४८) ढूंढिये (४९) बौद्ध (५०) दोनों ब्रह्म समाजी

आर्यगण। ये ऊपर लिखे सब मत भरत खण्ड वासियों में प्रचारित हैं। कहो कैसे सत्यानाश न हो उस देश का, जहां इतने मिथ्या मत प्रचरित हों। कहावत है "एक घर दो मना। वह घर कैसे बना" जब एक ही घर के बनाव में आफ़त तो देश के बनाव की क्या आशा। फिर इतने ही यहां मत हैं ऐसा भी निश्चय न करो किन्तु इनमें से बहुत से शाखा पल्लव भी रखते हैं। अंत में जो दो प्रकार के ब्रह्म समाजी लिखे हैं इन बेचारों की तो अभी छुट्टी भी नहीं हुई। ये दोनों मत बंगालियों ने चलाये हैं - इनमें से एक तो वेद को बिल्कुल ही नहीं मानता, दूसरा सन्दिग्ध है सम्वत् १९३८ में श्री महाराज ने जब कि कलकत्ता में थे ब्रह्म समाज के अधिष्ठाता केशवचंद्र सेनजी आदि का भी सन्देह भली भांति दूर कर दिया था। जिन पुरुषों की तृप्ति इतने मतों से नहीं होती वे बहुत खुशी से

यावनी और ईसाई मतारण्य कुंडों में भी जा डूबते थे धन्य श्रीमान जिन्होंने ये सब अनर्थ रोके। परमात्मा उनको दीर्घायु करे॥

इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्य दयानन्द सरस्वती दिग्विजयार्कीय द्वितीयांके सामाजिकचरित्रविवर्णनं नाम पंचमो मयूखः ॥

अथ षष्ठो मयूखः

आर्य्यगण पंचम मयूख द्वारा आर्य समाजों का बहुत सा वृत्तान्त वर्णन हो चुका है उन्हीं का अब कुछ प्रबन्ध सुनिये ॥

प्रत्येक समाज में मुख्य पांच पंच अर्थात् अध्यक्ष होते हैं (७) १ उनमें से पहिला सभापति दूसरा नायबसभापति तीसरा मंत्री चौथा पुस्तकाध्यक्ष पांचवा कोषाध्यक्ष कहाते हैं और ये सब मन्य हैं -

१ (७) ये पांचों पंच समाज का सारा बोझ उठाने वाले होते हैं इसलिये इन पदों पर बहुत योग्य पुरुषों का नियत होना अवश्य है अन्यथा बना बनाया समाज ढूंढ आता है ऐसा अनुभव है यदि भूल से कहीं ऐसे स्वार्थ तत्पर लोग किसी राज-समाज में नियत हो जाय होवें तो उनको अनुभव आने पर शीघ्र वहां से ऐसा हटा दे जैसा कि श्रीमान् स्वामीजी महाराज ने बम्बई समाज से हरिश्चन्द्र चिन्तामणि और अपने वैदिक यंत्रालय से सिंहजी को विज्ञापन देकर हटा दिया था देखिये अब वहां दोनों ठौर कैसा धर्मराज्य है अधिकारियों को भी उचित है कि स्वार्थ तत्परता से जो अपकीर्ति होती है उससे सदा बचें- ठीक अपने नियमों पर चलें सदा धरती की ओर निहारें न यह कि पदवी पाकर अधिक आस्मान् को मुंह उठ जाय। इस ढंग से चाहे कुछ दिन राज काज ठिकाने भी जाय परंतु समाज काज कदापि न सधेगा। समाजों में भरती होने की रीति यह है कि जब कोई मनुष्य उसमें दाखिल हो तो उसे उचित है कि अपने पेशे रुतबे खान्दान और लियाक़त वगैरः का ख्याल करने छोड़ दे और अपने को उन सब लोगों के समान समझे जैसे कि और लोग उसमें शामिल हों क्योंकि छोड़ देने को कहे हुए इन बातों के बने रहने से आपस की वह रीति प्रीत और कर्त्तव्यता जाती रहती है जिसका सदैव ध्यान रखना निहायत ज़रूर है। हर अधिकारी मनुष्य को अपने समाज का ऐसा प्यादा बन जाना चाहिये जैसा कि सुशिक्षित सेवक कि जिसको बैठते उठते दिल रञ्ज नहीं लगता न यह कि जगह पाकर ऐंठ गया।

अपना२ काम अपनी व्यवस्था पुस्तक के अनुसार करते हैं और प्रति र-
विवार को समाज नियमित स्थान में नियमित समय पर होता है जित
ने आर्य और सभासद लोग दर्ज रजिस्टर होते हैं वे सब वहां एकत्र हो
कर परमेश्वर की स्तुति और प्रार्थना के पीछे देशोन्नति कारक

सो बैठ ही गया अब कोई आओ कोई जाओ उसे कुछ परवा नहीं। हर एक समाजी हर प्रा-
ख्या के खुश करने की कोशिश करे - केवल उन्हीं लोगों से समाज में बैठ बात करना उचित
नहीं कि जो तुम्हें पसंद रखते हों वा जिनसे तुम्हारा दिल मुहब्बत करता हो ऐसे लोग तुमको
फिर भी मिल सकते हैं परंतु पैठ पैठ ही के दिन लगती है। जो लोग समाज में तुमसे दूर बैठे हों वा
कुछ खेद में हों अथवा जिनसे और लोग बातें न करते हों उनको विशेष कर अपनी बातों में
लगाओ हर एक के साथ हर मनुष्य की तबीअत का भी खूब लिहाज़ रक्खो अर्थात् उससे कभी को-
ई ऐसी बात न छेड़ो जिससे उसे वा दूसरों को रंज पहुंचे किसी की दिल्लगी वा गंवारों की तरह ए-
क साथ ज़ोर से हंस देना भी उचित नहीं। जिसकी प्रथम मुलाक़ात हो उसके साथ तो बहुत
ही इख़लाक़ के साथ पेश आओ फिर देखो कैसा काम बनता और सुख होता है इस प्रकार
बहुत से विषय समाज वालों को सोचने विचारने और करने को हैं इन सब पर जिसका पूर्ण
ध्यान होता है वही सामाजिक कामों को यथावस्थित चला सकता है अन्यथा समाज नहीं
बन्दरपाल है (अविवेक मतिर्नृपतिर्मन्त्री गुणवत्सु वक्रितग्रीवः। यत्र खलाश्च प्रबल
स्तत्र कथं सज्जनावसरः) १। जहां का राजा वा सभापति कौन मनुष्य कैसा है ऐसा विवेक नहीं
रखता और मंत्री गुणवानों की ओर से मुंह फेर फिसादी वा खिलाड़ियों की तरफ़ झुकाति-
य रहता है और जितने कर्मचारी वहां के हैं वे भी सब दुराचारी ही होने के कारण उस स-
जन वा समाज में भले और बुद्धिमान् कहाते हैं वहां आने जाने में सङ्कुचित होते हैं इसी
लिये कहा जाता है कि भाई आर्य्यगण ऐसे बनो जिससे तुम्हारे पास आने को स-
ज्जनों का [illegible] जी चाहे ॥

व्याख्यान देते और सुनते हैं और जिनको इच्छा होती है वे भी वहां जाते हैं अर्थात् किसी को उस दिन वहां रोक टोक नहीं होती सारांश वह दिन परम आनन्द का होता है सब लोग बड़ी प्रीति से परस्पर मिलते और सात दिन के भीतर की सब नूतन खबरें और समाचार पत्रों को कहते सुनते और सुनाते हैं इन समाजों में जितने लिखे हुए पंच और सभासद होते हैं वे सब अपने समाज का जिस प्रकार वार्षिक खर्च होना अवश्य जानते हैं उतना रुपया वर्ष के आरंभ में एकत्र कर देते हैं और फिर जो कोई विशेष खर्च आ पड़ता है तो उसके लिये सब लोग चाहे जिस दिन एकत्र होकर उतना रुपया जमा कर लेते हैं जितने की कि आवश्यकता उस समय होती है। इस प्रकार से हुई आमदनी नाम वार समाज कोष में लिख कर धरी जाती है फिर उसका खर्च अंतरंग सभा की मंजूरी से होता है। अंतरंग सभा की व्यवस्था इस प्रकार है कि जिस समाज में जितने सभासद होते हैं उन में से सब की प्रसन्नतानुसार विशेष धन देने वाले सभ्य और विद्वान् लोग सैकड़ा पीछे तीस के हिसाब से चुन लिये जाते हैं इस में उपरोक्त सभापति उपसभापति और मंत्री ये तीन पुरुष मिलाकर जो एक कमेटी बनाई जाती है उसको अंतरंग सभा कहते हैं। यह सभा प्रति मास एक वा दो बार नियमानुसार बैठती है और आवश्यकता पड़े पर बीच में भी तुरन्त एकत्र हो जाती है इसी के विचार और स्वीकार से मासिक वार्षिक और नैमित्तिक खर्च और सब काम काज तथा नौकरों की नौकरी बहाली आदि हुआ करती है जब कोई नया सभासद (मेम्बर) जमा होता है तब इसका नाम छिड़ता है और बहु पक्षानुसार स्वीकार किया जाता है अन्यथा कदापि नहीं॥

जहां उक्त सभा अपना काम यथोचित नहीं कर सकती वहां उसी की सम्मति के अनुसार उसी सभा के सभासदों में से पांच परम सभ्य विद्वानों की एक जुदी सभा बनाली जाती है उसको मीमांसक सभा और उसके पंचों को मीमांसक के सभासद कहते हैं बहुत से सूक्ष्म और गुप्त विचार तथैव अन्तरंग सभा से ठीक नहीं हुए कार्यों की मीमांसा (न्याय) इस सभा में होकर तीन पुरुषों की सम्मति के अनुसार काम लौटता पलटता और प्रचारित होता है इन दोनों सभाओं में कोई अन्य पुरुष नहीं आने पाता, समाज का एक दफ्तर भी होता है उसमें आवश्यकता के अनुसार लेखक और परिचारक होते हैं इस दफ्तर में समाज का सब हिसाब और कागज़ रहता है- बाहर के समाजों और अन्य२ स्थानों से यहां पत्रादिक आते और उनके उत्तर प्रत्युत्तर लिखे जाते हैं जो काम श्रीमान् स्वामीजी महाराज से पूछकर करना होता है उसको लिखा पढ़ी उनके समीप भेजी जाती है अर्थात् ये सब समाज प्रशंसित महाराज के आधीन रहते हैं और बहुत कुछ श्रीमान् के देशोपकारक कामों में ये लोग तन मन धन से सहायता भी करते रहते हैं ॥

जब श्रीमान् एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हैं तब इन सब के नाम तार आप भेज देते हैं और वैदिक वेदभाष्य के दफ्तर तथा अखबारों में भी खबर छप जाती है जहां पहुंचते हैं वहां के समाजी बाजा बाजे के साथ सब लोग बड़ी धूमधाम और उत्साह के साथ उनकी अगवानी करके पहिले से तैयार कर रक्खे हुए नियत स्थान पर पहुंचाते हैं और वहां पहुंचने से पहिले शहर में विज्ञापन (इश्तिहार) लगा दिये गये हैं कि अमुक दिन इतने समय से इतने समय तक व्याख्या

न में इतने दिन तक श्रीमान स्वामीजी महाराज व्याख्यान देवेंगे वहां सुनने वालों को उचित समय पर एकत्र हो जाना चाहिये। बहुधा एक वा डेढ़ मास कहीं इससे अधिक वा न्यून काल तक उस स्थान में काम के अनुसार स्थिति रख कर सब को आत्मोपकारक तथा देशोन्नति कारक वेदानुकूल व्याख्यान सुनाते और ऐक्यता उत्पादक आर्य समाज स्थापित करने का भी उपदेश करते हैं॥

जहां कहीं अच्छे सत पुरुष होते हैं वहां तुरन्त वा कुछ दिन पीछे समाज स्थापित हो जाते हैं अब तक जितने समाज बैठ चुके हैं यदि वे सब के सब उत्तम दशा में होते तो देश को बहुत सा लाभ हो रहता परन्तु परम शोक की बात है कि हमारे देश भाई जैसी कुछ आरंभ शूरता दिखाते हैं उसका शतांश क्या सहस्त्रांश भी पीछे को शेष नहीं रखते। कोई २ समाज तो बहुत ही हीन दशा में पड़ गये हैं। प्रथम जिन समाजों में अतीव होता था घमसान- तहां बराबर देखी जाती है अब सुनसान। जिन्ने बहुतों का चित्त फाड़ जुदा किया- उन्ने क्या दुनियां का भला किया। नामवरी को सभी चाहते परन्तु वह कैसे होती है सो नहीं जानते। आर्य समाजी कहावें- परन्तु घृणित काम करने में न डरावें। दिवाली दसहरा को छोटो बतावें- फिर क्यों स्वयं दीवाने होकर तिनों हजारें ही के दाव लगावें। किसी जीव को ना सताना दयादि ऐसा उपदेश करें- पर स्वयं शिकारी बन- बन २ फिरें। विवाहादि कामों में मितव्ययी होने के व्याख्यान छपवावें- परंतु स्वयं वैसे प्रसंगों पर उसे भूल हजारों रुपया रांड़ भांड़ और आतिश बाजी में गमावें। यदि पूछो कि आपने इस खुशी का कितना रुपया समाज कोष में स्थापित किया तो टका नहीं- भला आप को जो जात

कर्म नामकरणादि नामक संस्कार इस समय करना बहु आवश्यक थे सोभी किये तो साफ़ जवाब कि वह भी नहीं। ऐक्यता का डंका बजाकर अनैक्यता के अनेक भांति बीजारोपण करें और करावें-तथापि क्या ऐसे ऐसे लोग आर्य्यों के ताजही कहावें। संस्कृत की उन्नति में खर्च एकगुना तो यावनी और गोरंडी के लिये दस गुना। और जो कहीं पाय आवें बाहिर वालों की सहायता तो तुरंत कर दें उसको सौ गुना। होगई है मूर्ति पूजा में अनरुचि-फिर क्यों नहीं होती है संध्या बंदनादि कामों में अभिरुचि। सामाजिक कामों में परम अन्न लेखकों का जो करते हैं विश्वास-उनसे कभी नहीं हो सक्ती देशोन्नति की आस। यदि वैसे कामों में आपको है सदा अनवकाश-फिर चंग चौसर और शतरंज का कैसे होता है अहर्निश अवकाश। और भी उनके ऐसे ही अकथनीय अनेक कर्म-कि जिनके लिखने में आती है लेखनी को बहुत शर्म। सारांश उद्देश्य कुछ। और कृत्य कुछ कहो कौन ऐसों की सुने और क्योंकर श्रीमान् चाहते हैं सो जाने। यह बुराई केवल स्वार्थ तत्परता(८) करती है उसे छोड़ो और भले बनो॥

(८) यह बड़ाभारी दोष है विशेष कर इस देश की बड़ी जाति वालों में अधिक देखा जाता है अशुद्ध और विरोध की ठीक जड़ है इसका सुभाव सत्य धर्म के विरुद्ध है जो लोग इन्द्रियों का दमन और परमात्मा की पहिचान तथा उसकी पूरी भक्ति रखते हैं उन्हीं में यह नहीं होती बाकी हमारे सब देश पर इसका प्रराक्रम है जो नर सब कुछ होकर अपने तई तुच्छ जानते हैं उन्हीं से यह हार मानती है इसके बहुत करके पांच स्वरूप हैं १ द्रव्य २ सुख ३ दुःख ४ बिना निर्मल चित्त के सज्जन कहलाना ५ अपनी तारीफ़ सुनना सो विरले ऐसे हैं जिनको ये नहीं सताते अर्थात् इन पांचों में से कोई न कोई एक बात उसके चित्त में ज़रूर ही होती है जहां उ-

आढ्योस्मि धनवास्मि कोन्योस्ति सदृशो मम

अर्थात् मैं बहुत बड़ा आदमी तथा धनवान् और चलाव वाला हूं वह कौन ऐसा है जो मेरी बराबरी करेगा वा कुछ कहेगा. मेरा जी चाहेगा वही मैं करूंगा ऐसा विचार कभी किसी आर्य समाजी को चित्त में न लाना चाहिये खासकर तब जब कि कुछ बनाना चाहता है ॥

देखो विद्वानों का क्या कौल है (विद्या विवादाय धनं मदाय शक्तिः परेषां परिपीड़नाय। खलस्य साधोर्विपरीत मेतत् ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय १॥) अर्थ यह है कि संसार में सर्वोत्तम पदार्थ केवल विद्या है वह सत्पुरुष में होने से उसके ज्ञान को बढ़ाती है जिससे संसार के बहुत से लोगों को सुख होता है। और यदि वह दुर्जन में जापड़ती है तो उससे विरोध और उन्मादही के कामों को कराती है जिससे बहुत से लोगों का बिगाड़ होता है।

स्के बस में होकर किसी ने खेंचा तानी किसी पक्ष की की और सब बने बनाये काम बिगड़े॥ जिस्को द्रव्य का लालच है वह ऐसी राय देता और पसन्द करता है जिसमें वह मिले या घर में बचे जिसको सुख की चाह है वह आलसी उस राय दो[illegible] [illegible] करता है जिस में अपने ऊपर किसी काम का बोझ न आ पड़े वा उस काम के न बनने से कहीं कलई न खुल जाय तीसरा रूप दुःख का ऐसा है कि कितने ही आदमी थोड़े दुःख को इतना बढ़ाकर दिखाते हैं कि जिस्से उस्के यार दोस्त आदि जो वह चाहता है उसी चाल पर चलैं चौथा रूप इस रीति का है कि संसार में सिवाय मेरे और कोई बुद्धिवान् वा प्रतिष्ठित वा विद्वान् न कहावै और जो इस प्रकार के हों उनको धब्बा लग जाय पांचवां रूप ऐसा है कि आप में दरअसल कोई भी गुण स्तुति योग्य नहीं

उसीप्रकार दूसरा पदार्थ धन है वह सत्पुरुष के पास होता है तो उसके वितरण से अनेक पुरुषों और जीवों को लाभ पहुंचता है और भी उससे बहुत से अनुपम उपकारक कार्य सिद्ध होते हैं तात्पर्य यह कि सज्जन धनी अपने धन को परमेश्वर की अमानत समझकर उसी के कामों में लगाता है। परंतु यदि वही धन किसी दुष्टजन के पास होता है तो वह भाई बिरादरी और अड़ोसी पड़ोसी तथा नगर ग्राम और देश निवासियों का विनाश ही करता है सारांश दुर्जन धनी बढ़ २ कर कहता है कि मेरा एक से हज़ार वा लाख तक खर्च क्यों न पड़ जाय परंतु मैं उसको धूल ही में मिला छोड़ूंगा और सदा वैसा ही करता रहता है॥ तथा तीसरा पदार्थ शक्ति अर्थात् जिस्मानी ताक़त वा बलाव वा हुकूमत है यदि वह किसी सभ्य में हुई तो वह सबको दुःखों से छुड़ाता है और जो किसी खल में जा रही तो वह सबको अनेक प्रकार की पीड़ा में फांसता रहता है

सिद्धान्त यह है कि विद्या धन और शक्ति ये वास्तव्य में तीन पदार्थ हैं परंतु संगपाकर प्रत्येक से दो २ गुण प्रगट होते हैं एक से पदार्थ वाले के सहित संसार का यथावत् उपकार सिद्ध होता है। दूसरे से पदार्थ वाले के सहित संसार का अपकार अर्थात् विनाश होता है। उनमें से द्वितीय और तृतीय पदार्थों के दृष्टान्तों का बाहुल्य यहां लिखना कुछ आवश्यक नहीं क्योंकि सदैव सर्वत्र देखा ही जाता है कि धनवाले कैसे हमेशः सत्यासत्य मुक़द्दमात लड़ाते रहते हैं और ताक़तवाले अर्थात् बदमाश वा जत्थावाले अथवा सब प्रकार के नीतिहीन राज्याधिकारी अथवा चुंगी आदि के मेम्बर लोग किस प्रकार तोड़ २ दूसरों हीं

तथापि दूसरों के गुणों का फल अपने में जतलाकर अपनी मिथ्या स्तुति औरों के मुख वा स्वमुख से कहकर प्रकाशित करते हैं॥

में हां मिलाकर दे २ फूक्कां नर नाव प्रजाको दुःखित कर रहे हैं इसका दृष्टान्त यिद्याका सो वह भी इन दिनों सूर्यवत् प्रकाशित हो रहा है ॥

देखो एक तरफ़ श्रीमान् सकल गुण निधान स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज और उनके अनन्तर श्रीयुत मुन्शी इन्द्रमणि ※ व कविराज हरिश्चन्द्रजी और पंड्या मोहन लालजी आदि विद्वानों और पूना बंबई लाहौर मेरठ आदि के उत्तम आर्य समाजियों और हिन्दीप्रदीप भारतमित्र तथा अवधअखबार आदि के श्रेष्ठ सम्पादकों का कि कैसा जगत् में निस्पृहता के साथ आनन्द बरसा रहे हैं ॥

और उसके विरुद्ध दूसरी तरफ़ देखो श्रीयुत स्वामी विशुद्धानन्दजी तदनंतर राजा शिवप्रसाद जी व राजपुराणिक चतुर्भुज जी और पंडित श्रीगोपालजी आदि पोपों और सब पोप समाजियों और मित्रबिलास कवि वचनसुधा और जामजमशेद आदिअखबारों के नष्ट सम्पादकों को किस प्रकार देश का नाश मारपेट भर रहे हैं श्रीमान् और आर्य्य समाजियों की मिथ्या निंदा करना तो मानो इन सब लोगों की ख़ास उपजीविका ही है ॥

इनसब में से पंडित श्रीगोपालजी तो बड़ेही विचित्र पुरुष हैं ये ज़िला मेरठ में कोई भूडबराल नाम ग्राम है वहां रहते हैं इनका गांव भी सर्व लोग वैसाही समझें जैसा कि ज़िला मैन पु-

※ परन्तु शोकका विषय यह है कि इन महाशयों ने पीछे से लोभके वश होकर अपनी पद्धति और प्रतीति ख़राब करली कि जिससे वे सर्वत्र अति निंद्य होगए वह सर्व प्रकार मुफ़को अदर्श लाचारी तृतीयखंड के चतुर्थाध्याय में प्रकाशित करना अत्यावश्यक हुआ - परमेश्वर अब भी उनको सत्पथानुवर्ती करे ॥

री में ओगांव (९) महात्माजी ने सवा हाथ लंबी चौड़ी ४१८ पृष्ठ की एक पुस्तक बनाकर उसका नाम वेदार्थप्रकाश रक्खा है यह वास्तव्य में वेदार्थ प्रकाशक तो नहीं दीख पड़ती परंतु वेदार्थनाशक कहें तो यथार्थ होगी क्योंकि जो वेदों को नहीं जानते वे उसके अर्थ को क्योंकर प्रकाश कर सकते हैं जगत् में झूठ सच्चे पंडित और विद्वान् कहाते थे सो ऐसी रचना रची जो ढोल से खाल भी गई यदि इनकी इस कृति पर कोई विद्वान् लेखनी गहे तो उसका ग्रन्थ इनके ग्रन्थ से अपरिमित बढ़े आगे (१०) स्थाली पुलाक न्यायवत् कुछ दोष दर्शित करदिये हैं (११) उन्हें देख इनको विद्या का परिचय सबको भली भांति होजायगा प्रथम-आपने पद्यमय ग्रन्थ रचने का उद्योग किया (१२) कुछ दूर चलकर गिर पड़े तब गद्य पर आरहे सो भी ठीक नहीं कहो कितना भारी यह दोष यदि श्लोक मय ग्रन्थ बनाने की शक्ति न थी तो पहिले ही से क्यों न सोच लिया और जो आरंभ कर चुके थे तो उसी प्रकार सब ग्रन्थ

(९) यह गांव उस पक्की बड़ी सड़क पर आबाद है जो कलकत्ता से पेशोर तक गई है इसका दूसरा नाम चूतियों का शहर है यहां के रहने वालों की बहुत सी कहानी प्रसिद्ध हैं जिनको सुन वह गांव यथा नाम तथा गुण मालूम होने लग जाता है॥

(१०) इस न्याय का अर्थ यह है कि जैसे हांडी भर चांवलों में से एक सीत के टटोलने से हांडी भर की परीक्षा हो जाती है॥

(११) आगे मुख्य पंच दोष छांट कर वर्णन किये हैं उन्हीं के अन्तर्गत बहुत सी बातें आगई हैं और जो बातें कही हैं उनका उदाहरण उसी के नीचे नोटों में लिख दिया है॥

(१२) इनके कुल ग्रन्थ में १२ अध्याय हैं उनमें से आरम्भ के छोटे २ दो अध्याय ज्यों त्यों श्लोकों में चला कर बाकी दस संस्कृत भाषा में चलाए हैं और वे बहुत बड़े २ हैं यदि ये भी पद्य रूप होते तो कम से कम दो हज़ार श्लोक बनाने पड़ते परन्तु पण्डित जी महाराज की तो गरमी केवल सवा सौ श्लोकों की रचना से ही पटा गई फिर आगे कैसे चलते॥

समाप्त करना उचित था जब दोनों प्रकार के (१३) बुद्धि ल-क्षणों से गिरे तो फिर किस काम दे रहे क्योंकि इन चूकों से उनकी स्थिति तीसरा कक्षा (दर्जे) में हुई सो वह कक्षा केवल निर्बुद्धियों ही के लिये है अतः ऐसों के ग्रन्थ कदापि माननीय नहीं होते मूर्खों को चाहे भले ही ठगें। कदाचित् कहें कि हमने ऐसी रचना से अपनी दोनों प्रकार की विद्वत्ता दिखलाई है तो इसका कुछ प्रसंग भूमिका में लिख देना उचित था सो कुछ नहीं लिखा तो बस॥ द्वितीय- किसी विद्वान् को कभी कोई मिथ्या (१४) बात भूल

(१३) श्लोक। अनारम्भो मनुष्याणां प्रथमं बुद्धि लक्षणम् ॥
आरम्भितान्त गमनं द्वितीयं बुद्धि लक्षणम्॥१॥

(१४) जैसे महाराज काशी नरेश को छली वा बहाने बाज़ कहना और कानपुर के शास्त्रार्थ में स्वामीजी की हार बताना और उसी मिथ्या बात की गवाही में वहां के साहब कलक्टर आदि का नाम निःशंक लिखना इनका कैसा निकृष्ट कर्म- सत्य वार्ता तो वहां की यह है कि जब श्रीमान ने पंडित लक्ष्मण शास्त्री और हलधर ओझा को अवाच्य किया- तब हज़ारों प्रतिष्ठित हिन्दू मुसल्मान और अंगरेज़ों के बीच संस्कृत के विद्वान् असिस्टेंट कलक्टर ने जो कि उस शास्त्रार्थ में मध्यस्थ थे अपनी कुरसी से उठ- खड़े हो- टोपी उतार स्वामीजी महाराज को सलाम कर उच्चस्वर से सबको श्रीमान् की जीत सुनाई और नीचे लिखे अनुसार लेख अंगरेज़ी में लिख हस्ताक्षर कर दिये हैं सो यह सब शास्त्रार्थ पत्र यथा वत् मेरे पास मौजूद है कहो- क्यों ऐसों के पूजने वाले नरक को न जावें,

नक़ल अंगरेज़ी चिट्ठी साहब असिस्टेन्ट कलेक्टर व डि॰ मजिस्ट्रेट कानपुर·

कर भी अपने ग्रन्थ में न लिखनी चाहिये इनने जानबूझ कर अनेक मिथ्या प्रसंग भरदिये हैं जिनमें कितनेही खड़ अतिथि नों को माना है कहो इसका नाम विद्वत्ता है वा अविद्वत्ताका यह छोटा दोष और क्या ऐसों को कभी कारागार हुआ पंडितजी ने नहीं

True, copy

Cawnpore

Gentleman

At the time in question I decid in favour of Daia nand Sarasswati Fakir and I believed his arguments accordance with the veds. I think he wo the day. If you wish it I will give you my reasons for my decision in a few days.

yours obediently

Sd W. THAIRC

अनुवाद वा नमूना

प्रतिष्ठित जन कानपुर

मैंने इस शास्त्रार्थ के समय स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी की जीतका निश्चय किया और यकीन से उनका सब कहना वेदानुकूल है इसलिये मैं कहता हूं कि अवश्य उनकी जीत हुई यदि किसी को मेरे किये निर्णय का प्रमाण अपेक्षित हो तो मैं थोड़े दिनों में अपनी सब वे दलीलें लिख दूंगा जिनसे स्वामी जी की जीत मैंने प्रसिद्ध की है ॥ इति ॥ ता० १७ अगस्त सन् १८६९ ई०

द० आपका सेवक डबल्यू थे अर्स असिस्टेन्ट कलक्टर कानपुर

सुना (१५) सच कहा है। लोभः प्रतिष्ठापापस्य ॥

तृतीय- किसी विद्वान् के लेख में अभिमान और पक्षपात तथा

(१५) संबत् १९२५ की बात है कि श्रीमान् मुकाम अनूपशहर ज़िला बुलंद शहर में विराजमान थे वहां के एक अगरी नाम के गुसाईं पर-गढ आर्य गुर्जर वैद्य ने मुन्शी प्यारेलाल साहब तहसीलदार कोम खत्री साकिन् बरेली के इजलास में नालिश की कि यह गुसाईं आज गंगा तट पर फ़लां फ़लां गवाहों के सामने श्री स्वामी जी को गृहस्थ किरस्तान और अंगरेज़ों का तनख़्वाहदार उपदेशक कहता है वह अपने कहे का सुबूत दे या मुताबिक़ क़ानून सज़ा पावे- चुनांचिह गुसाईं गिरफ़्तार हुआ और उससे पूछा गया कि बता स्वामी जी के स्त्री पुत्रादि कहां हैं- और किस पादरी ने उनको ईसाई बनाया और किस सर्कारी ख़ज़ाने से उनको प्रतिमास तनख़्वाह मिलती है- रेल तार का ख़र्च हम से ले और पता लिखाकर तू अभी सबको जहां तहां से पकड़ा दे। अब तो गुसाईं जी हैं हैं करने लगे। चट हुकम छः महीने की सजा का हुआ— धन्य श्रीमान् के दयालु स्वभाव को कि जिन्हों ने यह ख़बर पाते ही उसी दम वैद्य राज को उलटा दौड़ा कर उसे छुड़वाया —— वैद्यराज ने तो अपनी जान तुरन्त आकर श्रीमान् को बड़ी फूल के साथ ख़ुश ख़बरी सुनाई थी परन्तु यहां आते ही विचारे आपत्ति में पड़ गये— पीछे उसको छुटा सुन जब श्रीमान् शांत हुए तब सबको उपदेश किया कि भाई जब तक मनुष्य में अविद्या होती है तब तक वह स्वार्थ तत्परता में ही डूबा रहता है और उससे सदा ऐसा ही व्यवहार होता है —— जैसा कि तुम देखते हो इस गुसाईं का —अनेक बहुत से लोग इस संसार में इससे कहीं बढ़ कर हैं और मेरा उद्योग विशेषकर ऐसों ही के सुधार के लिये है ॥

आत्मश्लाघा और मिथ्या प्रमाण कदापि लेशमात्र को न होना चाहिये जैसे है अमर कोश पर आप उसे बताते हैं स्मृति सो इन का ग्रन्थ इन सब दोषों से यथेच्छ परिपूरित है (२६) कहो कैसा और

---

(२६) अब देखिये इनकी आत्मस्तुति और अभिमान कि कैसा अपने को प्रसिद्ध करते है ॥ श्रीमत् पद्वाक्य पारावारीण — श्रीगौड़वंशतिलक — श्रीगोपाल शरण प्राप्त — महातेजस्विविशेषं बुधादृते — हमारे पहुंचते ही मेरठ निद सी सब विद्वान् कृत कृत्य हुए — उन सब ने हमको सभापति बनाया — हमारी आज्ञा को वे सब ऐसी समझते थे जैसे राजा की — हमारा नाम सुन प्रथम पराजित होने के कारण दयानन्द थर २ कांपते और वे होश हो जाते थे हमको सब लोग महादेव की नाईं जानो और धीरज धरो — जो २ दयानन्द कहते गए सो २ सब हमने मंजूर कीं पक्के कागज़ पर शर्तें लिख रजिष्टरी कर देने तक को कहा परन्तु वे अपनी किसी एक भी बात पर न जमे — निदान यह कह कर मेरठ से भागे कि कहीं श्रीगोपालजी हमको सर्कार में अर्जी देकर पकड़ा न देवें — और भी सब देश देशांतर में श्रीमान् का हारना और सब ठौर से भागना ही लिखा है — पक्षपात की यह रंगत कि — आर्य्यावर्त्त भर के ब्राह्मणों में सिवाय गौड़ों के और कोई ब्राह्मण न पवित्र हैं न पूजनीय — गौड़ों की जिस प्रकार उत्तमता महात्मा जी ने वर्णन की है वह सब प्रकरण देखने ही के योग्य हैं — आप लिखते हैं कि जैसा गुड़ सब पदार्थों में उत्तम वैसे ही हम, बल्कि इसीलिये गुड़ शब्द का हमारी जाति में सम्बन्ध रक्खा गया है — दूसरे गुड़ शब्द का गोल गोल का मध्य मध्य का आवर्त अर्थ हुआ वह ब्रह्म से संबन्धित हो ब्रह्मावर्त नाम का पवित्र देश बना है तहां के मुख्य निवासी हम गौड़ों को जानो और मानो ॥ वाह जी महाराज वाह आपने व्याख्या तो खूब ही की परंतु यह विचार न किया कि प्रथमार्थ में चींटे और द्वितीयार्थ में देश भर के विद्वान् आपको चिपट जावेंगे फिर

कितना गहरा यह कलंक ॥

चतुर्थ — श्रेष्ठों लेख वह होता है कि जिसमें प्रतिष्ठितों के साथ उनकी प्रतिष्ठानुसार शब्दों का ऊह हो जिससे उसकी समालोचना के समय किसी के चित्त में ग्लानि न उपजे और न किसी को उसके पढ़ने व सुनने से किसी प्रकार का पश्चात्ताप वा क्षोभ हो सो इसका भी कुछ विचार नहीं किया गया है (९७) कहो कैसा यह अप्रतिष्ठित कर्म और

आपका पता भी न चलेगा और विद्वानों को सर्व करने में आप के समान खींचा तानी भी न करनी पड़ेगी वे लोग आपकी उसी विकांडी स्मृति के अनुसार गुड़ का अर्थ गोल और गोल से स्वार्थ में क प्रत्यय करके आपको कुराड का सहोदर बना छोड़ेंगे और आपकी गिन्ती हरयानियां और गोला पूरबों में करावेंगे फिर आपका मीठा अथ मार्थ भी ठीक होजावेगा और ब्रह्मावर्त्त देश यथा शास्त्र कान्यकुब्जों ही के अधिकार में रहेगा और आदि तथा शुद्ध गौड़ वे रहेंगे जिनकी जड़ गौड़ वाना नाम प्रदेश में है और ,, सारस्वताः कान्यकुब्ज गौड़ो मैथिल उत्कलाः,, इस वाक्य के पाठ क्रम से भी उनका कहा शुद्ध ठहरेगा इस लिये बहुत अच्छा हो जो आप इससे अधिक न बढ़ें क्योंकि प्रसिद्ध है कि बढ़ता है वह गिरता है ॥

(९८) दयानन्दः परास्तः — ऐसा हजारों बार लिखना तथा जगत् मान्य श्रीमान् को छली भ्रमी नास्तिकादि कह कर — स्वयं वरिष्ठ होना तथा ऐसा लिखना कि ,, प्राठतरा अपि गौड़ा अधीत वेदेभ्यो दाक्षिणात्येभ्यः श्रेष्ठा एव ,, अर्थात् बहुत मूर्ख भी गौड़ लोग समस्त वेद पाठी अच्छे २ विद्वानों से बढ़ कर ही श्रेष्ठ होते हैं — ,, दाक्षिणात्यानां वेदाध्ययनं शूद्रवन्निषिद्धम्,, अर्थात् जैसा शूद्रों को वेदों का पढ़ना अनुचित वैसा ही दक्षिणी ब्राह्मणों को भी न पढ़ना चाहिये। सार इनके हृदय का यह है कि पंच गौड़ों के नाईं पंच द्राविड़ भी वेदों को डुबो देवें तो हमारी बनपड़े — इसी हेतु आपने लिखा है कि कभी वेदों की वाणी कल्याणकारिणी नहीं ठहर सकी। सो दयानन्द ठहरते हैं — अतः दयानन्दः परास्तः ॥

लांछन कभी ऐसे लोग विद्वानों से प्रतिष्ठा नहीं पाते॥

पंचम — सब बात रही एक तरफ़ अर्थात् और कुछ न हो तो जिसका नाम विद्वान् का लेख उसका हर एक आशय संगत तथा युक्तियुक्त और वेदानुकूल तो हो और उसके सब पद पदार्थ तथा छन्दादिक व्याकरणादि शास्त्रों की यथावत् शुद्धि रखते हों (१८) अन्यथा व्यर्थ

(१८) असंगत और परस्पर विरुद्ध ऐसे लेखों को कहते हैं जैसे कहीं लिखा कि दयानन्द मारे डर के कभी किसी विद्वान् के साम्हने नहीं हुए और फिर कहीं जाकर लिखा कि बम्बई काशी लाहौर आदि में कना० पंडितों से हारे — मनुष्यों से सूर्य चन्द्रादि ग्रह उत्पन्न हुए दाक्षिणात्यों की भाषा को अशुद्ध कहना फिर उसकी अशुद्धता के परिचय में अपनी उस भाषा के अपशब्दों को दिखाना जिसे प्रथम बहुत शुद्ध कह चुके थे — "एष धर्मस्य वै योनिः०" इस मनुवाक्य का विपरीतार्थ यह जताना कि ब्राह्मण मात्र की उत्पत्ति के बीज हम गौड़ लोग हैं "नोपतिष्ठति०" इस मनुवाक्य से दो संध्या की जगह चार संध्या करने को बताना। अंगिरा ऋषि - देवी और पार्वती का संबंध अंगरेज़ ईसामसीह और गिरजाघर में यथाक्रम घुसेड़कर उनको वेदानुकूल कहना तथा स्वस्त्रियों के सुख योनि की उपमा देना - युक्तिरहित और वेदविरुद्ध समझा यह कही जाती है। कि "वैशेष्यात् प्रकृति श्रेष्ठ्यान्नियमस्य च धारणात्॥ संस्कारस्य विशेषत्वात् वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः॥१॥ यद्यप्येते ह्यनिष्टेषु वर्तन्ते सर्व कर्मसु। सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्या ब्राह्मणो दैवतं महत्॥२॥" ये दोनों श्लोक यद्यपि मनुस्मृति में ही पाये जाते हैं परन्तु विचारवान को स्पष्ट विदित होजाता है कि प्रथम श्लोक से द्वितीय श्लोक का आशय बहुत विरुद्ध है मनुजी ऐसे महात्मा के लेख में ऐसा बिरोध नहीं आसक्ता सो इसका किंचिदपि विचार न करके प्रधान को गौणभाव प्रक्षिप्त और सर्वथा त्याज्य बचनों को प्रधानता देकर लिखा कि ऐसे ही ब्राह्मण होना चाहिये नहीं तो भला किस प्रकार प्रवर्त होय॥ अब उनके गद्य और पद्यों की थोड़ी अशुद्धि की ओर देख लीजिये॥ ६वें श्लोक के चतुर्थ पदांत में खंड पदोपन्यास रूप यति विच्छेद दोष है - ९वें श्लोक में कालिकाह्नि का पद अशुद्ध और २०वें का भावार्थ भ्रष्ट २९ व ३०वें श्लोक लक्षण विरुद्ध और

विकत्थन और वृथा परिश्रम कहाता है इन दिनों तो अन्यमान्य वह लेख होता है जिसकी देशभाषा तक सर्वथा और सर्वांश शुद्ध हो सो यह

४० वें श्लोक में छंदोभंगदोष है इसी प्रकार और भी बहुत से पद्य हैं ॥

३०२ पृष्ठ में "स्वस्मिन् शूद्रत्व निरसायोपनयन मवश्यमेव द्विजत्व सिद्धा संध्योपासन पुरस्सरं वेदाधिकार सिद्धौ विधेयमिति सिद्धान्तः" इस पंक्ति की अनन्वितता और अशुद्धता विद्वज्जनों को स्वतः स्पष्ट हो जायगी ग्रन्थकार का भाषार्थ भी देखिये "अपने शूद्रता के दूर करने को उपनयन अवश्य करना चाहिये इस प्रकार द्विजत्व सिद्ध करके संध्योपासन पूर्वक वेदाधिकार है सिद्धान्त हुआ" अब किंचित् यहां भी कटाक्ष निक्षेपणीय है कि इस प्रकार यह किस पद का अर्थ है और प्रकार के अनुक्त होने से "इम" इस पद से किसका परामर्श है एक और विचित्र चमत्कार देखिये "सन्ध्योपासन पुरस्सरं" इस पद को "असमासान्तःस्थ" वेदाधिकार पद का विशेषण लिखा है और "वेदाधिकार सिद्धौ" इसका "वेदाधिकार है" यह अर्थ निरूपण किया गया है। क्यों न हो व्युत्पन्नों का तो यही लक्षण होना चाहिये व्युत्पन्नता तो इसी प्रकार दिगन्तगामिनी होती है साष्टाङ्ग है आप ऐसे व्युत्पन्न शिरोमणियों को। और भी देखिये पृष्ठ ३८० में आपने लिखा कि "सन्यासाश्रमस्तु मुक्तिरूपः फलं परमपुरुषार्थत्वादिति सिद्धम्" इस वाक्य का अर्थ कहिये क्या है। पृष्ठ ४०५ में आपका निस्नातं पद तो बहुत ही शुद्ध है समाप्ति के श्लोक में "वेदार्थ प्राव्हेति सुख प्रकाशः" ऐसा लिख, देखिये आप कैसे वैय्याकरणभूषण बने हैं। भला कहिये तो सही कि आपने यहां कौनसा समास माना और इस लेख से विपरीति वेदार्थ प्रकाश यह नाम निकला। आर्यगण महात्माजी वेदार्थ प्रकाश करने को चले तो यह प्रकाशित किया कि परमेश्वर निराकार होने के कारण श्वासरूप वेद उससे उत्पन्न ही नहीं हो सके, और नियोग तथा मातुलसुता परिणयन में दोषारोपण कर जिन वेदों का प्रकाश करना चाहते थे उनका स्पष्ट खण्डन किया इसी प्रकार बाल विवाह की पुष्टि करना भी इन लोगों का अनर्गल कर्म और देश विनाश का परम हेतु भूत इनका सारा ग्रन्थ है ॥४॥

गड़मेटो—आर्य्यगण महात्माजी अनेक दुर्वचन श्रीमान् को लिखकर सफ़ाई दिखाते हैं "तनु मात्सर्य भावत:" कहिये संसार की कैसी विचि

उसने इनको तात्काल पारसाल ऐसी पटक दी कि महात्माजी का जी ही जानता होगा॥ वह वृत्तान्त यह है कि यहां ज़िला स्कूल में इटावे के निवासी पंडित भैरवदत्तजी के प्रख्यात एक सच्छिष्य पंडित ललिता प्रसाद जी नाम के एक विद्वान् हैं उनके साथ शास्त्रार्थ छिड़कर उमादत्त पराभूति प्रकाशित हुई॥ यहां आगे उसमें का थोड़ासा उदाहरण लिख दिया है सब लोग उसको देख निर्णय करें कि ये कैसे क्या विद्वान् हैं॥

अथोदाहरणम्—वस्तुतस्तु पत्रान्ते वृत्तमपि श्रीमद्दरिद्रिन: सूक्तिं यथार्थ्ययतीत्यस्य अथवा इच्छयादरिद्रिन स्सूक्तिं गोर्गौरित्यादिकामयति अगच्छति भवति सति विपरीति लक्षणयागच्छति सति पत्रान्तेर्थि वृत्तमपि श्रीमत् काका श्रीमदित्य र्थो यथार्थी दरिद्रिनो राज्ञ इच्छया दीयता मस्मा इत्याकारकां सूक्तिं मयति प्राप्वद्वापि गच्छति सति किं श्रीमानिति ध्वनी तो नावबुद्ध एव भवता नैतच्चित्रम्॥ इस पंडित ललिता प्रसादजी के लेख का आशय ठीक २ यह है कि जिस प्रकार कोई भिखारी राजा की यह आज्ञा पाकर भी कि इसे कुछ दो सुशोभित नहीं होता। उसी प्रकार आपका श्लोक भी लक्षणा विरुद्ध होने के कारण अशोभित है॥ सो यह अर्थ पंडित उमादत्तजी नहीं समझे उन्होंने पं॰ ललिताप्रसाद जी को यह लिखा कि। अस्मिन्नगरे स्वप्नेपि मम राज्ञा सह समागमा भावाद्दीयतामित्युक्तेस्तु दूरा देवा पास्तत्वात्। अर्थात् मांगना तो दूर रहा कभी सपने में भी मेरा इस नगर में किसी राजा से समागम नहीं हुआ। अब विद्वान् लोग विचार कर लेवें कि पं॰ उमादत्तजी महाराज कैसे विद्वान् हैं और उनसे पूछें कि पं॰ ललिताप्रसाद जी ने यह कहां लिखा था कि तुम राजा से मांगते फिरते हो। जब पं॰ ललिताप्रसादजी सवाल दीगर जवाब दीगर की कहावत देखी तब उन्ने पं॰ उमादत्तजी को दूसरा पत्र लिख उसमें यह श्लोक

व लीला है अर्थात् ये लोग कैसा उछल कर पांडित्य दिखा रहे हैं परंतु खूब जान लो कि बहुत सा बुड़ बुड़ शब्द और छलक अपूर्ण ही घट में देखी जाती है न कभी किसी पूर्ण में भाई पंडित नाम धारी लोगो तुम अपने मुंह जितना अपना बड़प्पन

लिखा "अर्थबोध प्रमाद भांकि सज्ज: पूरपूरिते। लेखोपाये न किं नोव ध्वसुष्युन्मीलिते मया॥१॥" अब पं॰ उमादत्तजी महाराज ने अपनी पहिली भूलको छोड़ पं॰ ललिताप्रसादजी के इस श्लोक पर तर्क किया कि चक्षुषी इति सप्तम्यन्ते प्रकृत भावाभावत्वेन, सप्तम्यन्तस्त्व नन्वितः॥ इसे देख पं॰ ल॰ प्र॰ ने लिखा कि वाहजी वाह आपने तो खूब ही वैयाकरणता छांटी॥ अर्थ न समझ कर सप्तम्यन्त अनन्वित है यह लेख तो स्पष्ट आपकी यथा जातता विदित करता है॥ फिर इसका अन्वय लिख: भेजा वह उमादत्त पराभूति ग्रन्थ में स्पष्ट लिखा है॥

अब इन महाशय की और भी कुछ वैयाकरणता उमादत्त पराभूति ग्रन्थ से संग्रह की जाती है॥

जैसे अपराह्ण शब्द जो कि उत्तर दिन वाची है उसे महात्माजी अपरान्ह और प्रतिद्वन्द्वि शब्द को प्रतिद्वन्दि लिखते हैं और बड़े ऋषि वचन विरोधात् यहां संहिता भी नहीं कर जानते॥ अब कुछ साहित्य का विषय देखिये। "क्षिपति सर्वमसौ प्रकृते रह महमिका मनुसत्य पृथग्जनः॥ बुधजनस्तु विवेकवशेन तां वशयितुं यतते विगतस्मयः॥१॥" यह श्लोक पं॰ उमादत्तजी का है इस पर ललिताप्रसादजी लिखते हैं कि इस श्लोक के प्रथम पाद में गुरु के स्थान में लघु वर्णों पन्यास से छन्दो भङ्ग है और जो पादान्त का लघु भी गुरु होता है यह समाधान, सो भी असङ्गत है क्यों कि काव्य प्रकाश साहित्य दर्पणादि में स्पष्ट लिखा है कि यह वचन द्वितीय चतुर्थ पाद विषयक है और "अमावसायके मया विदूहिता सदर्थके"॥ अमासंमनना सुपाचता न्ययाति सन्मुदे॥२॥ इस दूसरे वृत्त में हत वृत्तता दोष है। बस यह दिग्दर्शन मात्र कर दिखाया विशेष देखना चाहें सो असल ग्रन्थ में देख लेवें॥ कहिये पंडित राज यह पराभूति क्यों हुई और आप कैसे हार मान जवाब खा बैठे, और आप

प्रकाशित कर धन बाढ़ बनते हो उतने ही परीक्षकों के समीप कच्चा न र- हरते हो महत्व उसी का ठीक जिसकी स्तुति बिना स्तुत्य पुरुष की इच्छा और खर्च के औरों के मुंह लेखनी द्वारा सुनाई दे। सो ऐसा कोई एक भी दृष्टान्त आप लोगों में से किसी का देखा नहीं जाता थोड़े स्थल और मनु- ष्यों के सिवाय आप लोगों को कोई यह भी नहीं जानता कि कौन किस खेत की मूली हो। श्रीमान् सकल विद्या निधान स्वामीजी महाराज सारे भूमंडल पर सहस्रांशु के समान प्रकाश कर रहे हैं उसी प्रकार द- सो दिशा उनकी सत्कीर्त्ति से आच्छादित और उज्वलित हो रही हैं ल- क्षावधि लोग उन पर अहर्निश धन्यवाद रूपी पुष्पों की वृष्टि करते और उनका उपकार मानते हैं परन्तु उनको इन बातों का किंचित् मात्र गौरव वा प्रतिष्ठा वा अभिमान नहीं न आप ऐसे अनेक लोगों की निन्दा कृति सुनकर उनको कभी कुछ क्षोभ वा ताप उपजता है। मुख्य तत्व इस- का यही है कि वे मुक्त हैं और आप बद्ध इतना भारी अंतर उनमें और आप में है परन्तु शोक कि उसको आप नहीं जानते तभी आप लोग सब कुछ को न कुछ और न कुछ को बहुत कुछ समझते और लिखते हो श्रीमान् के निकट त्रिलोकी का राजा (२३) और उसका सारा वैभव तृण प्राय है।

के यजुर्वेद भाष्य के छपने में क्या देर है कुछ दरखास्तें भी आगई हैं वा नहीं॥

(२३) प्रसिद्ध है कि फ़र्रुखाबाद के विख्यात साहूकार लाला पन्नीलाल आदमी बड़े ही जुज़रस थे तथापि श्रीमान् की आज्ञानुसार सैकड़ों रुपया मासिक खर्च उन्होंने स्वीकार कर लिया था थोड़े से अनुचित पर श्रीमान् ने उनको क्षणमात्र में फटकार दिया श्रीगो- पालजी ने लिख मारा है कि वे इन्हीं के डर से दयानन्द किसी राजधानी में नहीं गये परंतु प्रसिद्ध है कि जयपुराधीश महाराज रामसिंह जी को भी श्रीमान् ने इसी प्रकार सन्मुख

आप लोग इतनी हाय२ और अन्याय तथा खुशामद से भी अपना पेट नहीं भर पाते और श्रीयुत परम निस्पृहता के साथ हज़ारों रुपयों का जगदुपकारक वार्षिक खर्च आनन्दपूर्वक चला रहे हैं। आप उनका सर्वथा विनाश और वे आपका सर्वथा प्रकाश चाहते हैं सो यह सब आप लोगों का कर्म आपकी केवल अविद्या और स्वार्थ तत्परता के कारण है और उनका सर्व कर्म उनकी सद्विद्या और परमार्थ दृष्टि से प्रवृत्त हो रहा है। इसी कारण आप सर्व प्रकार से दुखी और श्रीमान्

से हटा दिया और संवत् १९३२ में श्रीमान् जब महाराजा तुकोजी राव हुल्कर वाली इंदौर के यहां मेहिमान हुए तब प्रशंसित महाराज ने उनको अपने खास बाग की कोठी में ठहराया था दोनों काल श्रीमान्को साथ ले हवा खाने को जाते थे प्रति दिन सर्कारी पाठशाला में व्याख्यान होता था महाराज की आज्ञानुसार सारा दर्बार और प्रजागण बराबर हाज़िर रह कर व्याख्यान सुन धन्यवाद देते थे एक दिन सर्कारी कोठी में पंडितों की सभा भी हुई थी उसमें श्रीमान् ने समस्त राज मान्य बड़े२ विद्वज्जनों को क्षणमात्र में मूक कर दिया था राजा साहब बहुतेरा चाहते रहे कि श्रीमान् सदैव इसी ठौर विराजमान रहें परन्तु १५ रोज़ से अधिक श्रीमान् नहीं ठहरे यात्रा के समय जो महाराजा साहब ने बहुत से महार्घ वस्त्र और थार भर मुद्रा श्रीमान्को भेट की थी उसका उन दिनों अनुपयोग जान श्रीमान् ने स्वीकार नहीं किया क्योंकि जब तक वेद भाष्य का आरंभ भी नहीं हुआ था कि जिसमें वह उपाय न काम आता॥ ऐसे अनेक दृष्टान्त हैं॥

अतुल सुखयुक्त रहते हैं सिद्धांत यह कि जिनको सदैव त्रिविध संताप घेरे रहे उनके उपदेशों पर चलने वालों का कहो किस विध कल्याण हो अतएव श्रीमान् सबको वास्तविक सुख हेतु का बोध अनेक बिध कर रहे हैं कि भाई आर्यो अपना सत्य सनातन वैदिक धर्म गहो जिससे तुम्हारी पराधीनता छुटे और कामना चतुष्टय की सिद्धि हो और "पराधीन सपने सुख नाहीं" यह कहावत देश भर में भली भांति ग्रथित है परंतु उस पर किसी का कुछ ध्यान है न बिचार आर्यगण यद्यपि यह ऊपर लिखी कहावत मोटी और भद्दी है परन्तु आशय इसका बहुत ही गम्भीर जानो जिस दिन वह हमारे देश निवासियों के चित्त में ठीक२ धसेगा उसी दिन से देश का सुधार होने लग जावेगा॥ श्रीजगदीश्वर श्रीमान् परम सुजान सकल सद्गुणों की खान इन स्वामीजी महाराज को परमायु करे जिन्हों ने देश सुधार का बीज सर्वत्र अनेक भांति बोकर उसके अंकुर को हरा करा रखने के लिये ठौर२ समाजों को जमाया है और उनमें से बहुतेरे अपना काम वैसाही कर रहे हैं जैसा कि चाहिये।

आशा है कि सर्वशक्तिमान् उनके भी हृदय को शीघ्र निर्मल करेगा जिनका शोक वास्तविक सत्पुरुषों को है— परन्तु बिना उपाय कुछ नहीं होता अतएव प्रशंसित श्रीमान् ने अंतःकरण की शुद्धि के लिये परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना जिस प्रकार करने को कही है वह सबरीति हमने अपने ज्ञान सागर ग्रन्थ में यथावत् लिखी है जिनको अपना और अपने देश का हित अभीष्ट हो वे उसमें अच्छे प्रकार मन लगा कर निर्मल होवें

और सुगमता के साथ सकल सुख भोग संसार से तरें परन्तु बिना अंतःकरण की शुद्धि के कभी किसी मनुष्य का कल्याण नहीं हो सकता न ऐसा पुरुष औरों का कल्याण कर सकता है इसी कारण जगत् में थोड़ों को छोड़ क्या पंडित क्या मूर्ख क्या राजा क्या रंक क्या अमीर क्या फ़क़ीर अर्थात् सब के सब (२४) खराबी में पड़े सड़ गल रहे हैं- इन में किसी एक को भी मुख्य कर्तव्य

(२४) देखो जगत् में कोई एक भी सुखी नहीं देखा जाता न किसी का कोई व्यवहार शुद्ध होता है। सब एक दूसरे से कपट छल रखते हैं। नहीं करना सोई करते हैं। देशान्तरीय थोड़े ही प्राचीन इतिहासों में लिखा देखा जाता है कि कहीं भरत खंड में मिथ्या वादी नहीं देखा गया — देनलेन उनका ऐसा शुद्ध है कि जो लेनदार- देनदार से कहे कि तुम जब तक मेरा रुपया अदा न करदो कभी इतनी हद्द से बाहर न निकलो तो वह वैसाही करता है। लाखों रुपयों का माल बिना रक्षक दिन रात महीनों तक जिधर देखो उधर पड़ा रहता है परंतु कोई उस पर दृष्टि पात तक नहीं करता। इत्यादि अनेक भांति जहां की स्तुति तहां की देखो अब कैसी फ़ज़ीयत सब के अग्रगंता पंडित संत महन्त आचारी पुजारी और गुसाईं- सोई अधिक झूठे लोभी कपटी और दुराचारी। देखो कल की बात है कि पूर्व में तारकेश्वर के महन्त एक पर स्त्री के प्रसंग में तीन वर्ष को और गुजरात में जाम नगर के बड़े लक्षाधीश लाखों मनुष्यों के कुल पूज्य गोकुलिया गुसाईं ब्रजेशजी एक चोरी के अपराध में दो वर्ष को कारागार सेवी हुए। इसी प्रकार जगन्नाथपुरी के वे राजा साहब जिनकी उपस्थिति के बिना जगन्नाथजी चोला ही नहीं बदलते थे जन्म भर को कारे पानी गये। और गुजरात बडोदा के गायकवाड़ बद चलनी के कारण गद्दी से उतार मदरास में

क्या है सो नहीं सूझता—करना धरना तो दूर कोई इतना भी तो नहीं सोचता कि मनुष्य संसार भर के जीवों में श्रेष्ठ कहा जाता है सो

नज़र बन्द कियेगये। इनसब के लिये बे शुमार खर्च और प्रयत्न हुआ परन्तु सब व्यर्थ ही गया इनका दुःख आर्यों से पूछे॥

पंडित २ बजे परंतु पंडित और विद्वान् शब्दों का ठीक अर्थ सत् और असत् का विवेक करना कराना है तदनुरूप ये लोग चाल न चल कर जैसा धनी मानी लोगों का मन देखें वैसा ही चट शास्त्रों का प्रमाण बना देवें कहो यह वास्ते पंडिताई के धब्बा नहीं॥ इसी प्रकार ये लोग सबके गुरु बनें परन्तु गुरु शब्द का ठीक अर्थ सबका दिन रात हित ही करना जो है सो कभी किसी पर प्रकाशित न करें। देखो वेदों में गायत्री मंत्र का कैसा बढ़ कर माहात्म्य है इसी कारण देखो उसके उपदेश के समय ब्राह्मणों में अब तक कैसा उत्सव किया जाता है परंतु इन दिनों के गुरु बन्ने वालों ने संसार को ठगने के लिये उस परम दिव्य अनुपम वेद सार मंत्र को व्यर्थ करके अपने न्यारे २ बहुत से मंत्र गढ़ लिये हैं उनका माहात्म्य सुना कर औरों से भी कहते हैं कि तुम अब तक गुरु मुख नहीं हुए तुम्हारी काया अपवित्र और नर जन्म वृथा है इनकी सुन्ने वाले लोगभी उनके जाल में फसकर तुरत हुआ हो ले दे चेलाहो बैठते हैं। चेला क्या हुए मानो उसी दिन घर वार सहित जन्म भर को उनके हाथ बिकगये। जब दिन रात पंडितजी वा गुसाईं जी वा आचारीजी वा किसी संत वा महंत जी की धौंस सिर पड़ने लगी तब देखो कितने चेलाजी कैसे मनही मन दुखी होते हैं फिर इसकी न कहीं दाद है न फ़रियाद-कुछ हो गुरु जी तो अपना काम बना चुके—होय तहां लों दे—न होय तब अपनी ऐसी तैसी में जा॥ कहो गुरु जी का मंत्र चेला को फला वा गुरु को। अतएव गुरु शब्द का ठीक अर्थ जो हितोपदेष्टा था सो अब

क्यों - विना इस सोच विचार के कभी कोई मनुष्य - मनुष्य नहीं कहा जाता। जैसे सड़ा गला बीज वा मेवा वा लकड़ी आदि पदार्थ अपनी

संसार में ठग डाकू और बदमाश वाचक हो गया। जैसे किसी ने किसी को दम झांसा दे दिवाकर किसी प्रकार से अपना काम गांठ लिया तो लोग उससे कहते हैं कि वाह भाई तुम तो बड़े ही गुरू हो आख़िर कार तुमने उसको अपना चेला बना ही छोड़ा- इत्यादि अनेक इसके दृष्टान्त जा सक्ते हैं॥

एक और नया गुरुचरित्र सुनिये वह इस तौर पर है कि कश्मीर के पास सुकेत मंडी नाम के एक वड़स्तुत्य राजा विजयसिंह जी संस्कृत पढ़े शिवभक्ति में प्रसिद्ध हैं वे किसी कारण अपने यहां के किसी कुल पूज्य कुछ पढ़े हुए ब्राह्मण से रुष्ट हो काशी निवासी पंडित बालशास्त्री जी के शिष्य हुए जब शास्त्री जी उनको ख़ूबही लूटने लगे तब कुल पूज्य जी का दुःख प्राप्त गुणित बढ़ गया - गांव के बाहर थोड़ी दूर पर एक शिवालय है राजा साहब वहां अपने इष्टदेव के दर्शन को प्रायः जाते थे उसी के निकट पूज्य जीने धूनी रमाई कुछ दिन पीछे प्रसिद्ध किया कि शिवजी मुझसे एकान्त में बातें करते हैं इस बात की कितने ही मनुष्य जोकि साधक थे कुछ २ साखी भी भरने लगे परंतु उसने सुना कि राजा साहब सत्य नहीं मानते बोला कि "हाथ के कंकन को आरसी क्या" जो मैं कहूं वह राजा साहब करें और आंखों से देख लें - वहां क्या कमी थी दो एक हज़ार रुपया पुरश्चरणादि के नाम से ले लिवाकर एक दिन बोला कि बस काम फ़तह है - वाह दो राजा साहब से कि कल शिव जी की महा पूजा लेकर साथियों को पांच सौ क़दम दूरी पर छोड़ हाथ बांध मंदिर में हाज़िर होवें इस प्रकार हाज़िर हुए राजा साहब ने मंदिर में आदेखा कि शिवजी का अचल लिङ्ग दो तीन बार डगमग २ हुआ और ऊपर से दूध की धारा और कुछ वारीक से फूल शिवजी पर गिरने लगे फिर

की परम सलक्ष भव्य और दिव्य मूर्ति है। इनके परम श्लाघ्य गुणों को जानना और मानना कोई सामान्य बात नहीं है। इस देश में सब २४ किरोड़ मनुष्य अभी थोड़े दिन हुए तब गिने गये हैं उनमें से कम से कम २३ किरोड़ मनुष्यों को तो प्रथम ही दर्जे में जानो। बाक़ी रहे १ किरोड़ उनमें से थोड़ों को छोड़ और सबको दूसरे दर्जे में मानो। और जिस क़दर छोड़ चुके हो उनको तीसरे दर्जे में ले आओ और उन्हीं को श्रीमान् के कुछ गुणों को जानकार समझो॥

सिद्धान्त यह है कि महान् भाग्योदय होय तब सकल जगत् पावन श्रीमान् के सदुपदेशों पर किसी की श्रद्धा वा विश्वास होय। फ़ारसी कहावत है कि "क़दरे न्यामत बाद ज़वाल" निश्चय जानिये कि ठीक ऐसा ही हाल होगा अर्थात् एक दिन ऐसा आवेगा कि उस समय के लोग श्रीमान् के लिये इतना शोक करेंगे कि जिसका वारापार न होगा उसी प्रकार प्रस्तुत काल के निकम्मे लोगों की निन्दा करते २ भी वे लोग न अघावेंगे। इसी लिये बारंबार कहा जाता है कि भाई आर्यगण नेक चेतो और श्रीमान् के अनन्त अनुपम अतुल अमल अचल और अनर्ह गुणों में हो सके वहां तक अनुराग करो - आप सुधरो और अपनी सन्तति तथा देश को भी विपत्ति से उबारो। बस यही उपदेश सबको श्रीमान का है, सोई प्रार्थना मेरी और कर्तव्य सब आर्य समाजों का है॥

आर्यगण अब स्थानान्तर में श्रीमान् सकल विद्या निधान स्वामी जी महाराज के विषय में कौन लोग यहां से यूरुप तक

ऐसा क्या विचार करते हैं उसका थोड़ासा उदाहरण आ-पको दिखला कर अपने इस ग्रन्थ की परिपूर्ति करता हूं ये सब लेख बड़े २ प्रसिद्ध, विद्वान् और आप्त पुरुषों के हैं

अथ प्रमाणाष्टकम्
हरिश्चन्द्रचन्द्रिकामास मार्गशीर्ष
स्थान नाथद्वार राज्य उदयपुर।

(१) श्रीयुतस्वामीदयानन्दसरस्वतीजीकास्वागत देश मेवाड़ ये स्वामीजी हम हिन्दुओं के पूरे हितेच्छु हैं क्योंकि हमारे मुख्य प्रमाणभूत वेदों को सर्वार्थ चिन्तामणि मान कर जैसाकि चाहिये वैसे सर्व काल उसकी मान्यता की वृद्धि के लिये उद्योग करते ही रहते हैं और हिन्दु पशुओं को स्थान २ में यथा शक्ति यथा ज्ञान सदुपदेश भी करते फिरते हैं यह उनकी परम प्रशंसनीय कृत्य है अतः ऐसे सत्पुरुष श्रेष्ठ वान्धव का स्वागत करना हम लोगों को अवश्य प्राप्त है क्योंकि उनका पधारना इस मेवाड़ देश में सांप्रत हुआ है यद्यपि कतिपय बिषयों में अल्प २ कारणों से हमारा और उनका एक मत्य नहीं है तथापि बहुत से बिष-य ऐसे हैं कि जिनमें एक मत्य भी तो है और सर्व बिषय में एक मत्य हो जाना सांप्रत इस जगत् में बन्ध्यापुत्र के सदृश असम-वित ही भासता है क्योंकि पिता पुत्र स्त्री पुरुष भाई बन्धु इष्टमि-त्र इन में भी जब सर्वांश में एक मत्य कहीं भी हो वैसा नहीं क-ह सकते तब अन्यत्र कहां उपलब्ध हो सक्ता है। संक्षेप से इ-नके और हमारे मत के ऐक्य और अनैक्य का बिशेष जैसे

कि आज तक समझा हुआ है इसके अनुसार लिखते हैं इस पर से और लोग भी विचार करलेवें कि ऐक्य विषेष अंश है वा अनैक्य विषेष अंश है ऐक्य अंश— ईश्वर को मानते हैं १ वेद को परम प्रमाणिक मानते हैं २ और स्मार्त कर्मों का अनुष्ठान करना आवश्यक मानते हैं ३ पठन पाठन क्रम सूत्रादि मूल ग्रन्थों का युक्त है ऐसा मानते हैं ४ यावत् बिधि निषेध की उपपत्ति युक्ति से सिद्धि समझते हैं ५ पदार्थ विद्या आदि जो देशांतरीय लोगों ने विषय कल्पना किये हैं उनकी भी सिद्धता वेद मूलक ही मानते हैं ६ स्मृत्यादिकों का प्रमाण भी वेद मूलक ही स्वीकार करते हैं ७ वर्णजाति विवेक मानते हैं ८ नियोग विधि को छोड़ विधवा विवाह को अशास्त्रीय समझते हैं ९ अनैक्य अंश— वेद में विहित नहीं इसी लिये मूर्ति पूजा आदि व्यवहार ठीक नहीं ऐसा मानते हैं १ जीवते हुए ही पितृ पिता महादिकों का श्राद्ध करना मानते हैं २ इत्यादि ये जो ऊपर ऐक्य और अनैक्य विषय के सिद्धान्त दिखलाए एतन्मूलक ही अनेक स्थल में ऐक्य मत्य और थोड़े स्थल में अनैक्य सिद्ध होता है इसको निष्पक्षपाति लोग विचार कर देखें कि थोड़े विषयों के लिये हम लोगों से स्वामीजी से विरोध है यह कहां से सिद्ध होगा और जो लोग विरोध है ऐसा समझते हैं उन्हें इतना भी ज्ञान कहां कि स्वामीजी के और अन्य विद्वानों के शास्त्रार्थ को समझ भी सकें मूर्ख लोगों को इतनाही उत्साह रहता है कि शास्त्रार्थ हो अपने भी देखें और शास्त्रार्थ होने के पीछे पूछते भी हैं कि कौन हारा और कौन जीता

क्योंकि संस्कृत का अक्षर भी तो नहीं जानते लीजिये इस प-
र से इन मूढ़ उत्साहियों को कितना ज्ञान होगा यह स्पष्ट है
कि नहीं अस्तु इन मूढ़ों को तो क्या कहें परंतु जो अपने को वि-
द्वान् लगाते हैं वे भी अपना और खेल देखने वालों का खेल चा-
र विद्वानों को और स्वामीजी को दिखलाते हैं, ये लोग क्या कर-
ते हैं कि रात दिन सिर फ़ोड़ २ कर कहीं वेद में से ढूंढ ढांढ मू-
र्ति पूजा का प्रमाण अपनी समझ के अनुसार निकाल कर स्वा
मीजी को बतलाते हैं और कहते हैं कि देखो वेद में मूर्ति पूजा
लिखी है। स्वामीजी भी ऐसे लोगों के पूरे गुरू हैं कि उन प्रमा-
णों को देखते ही देव का अर्थ विद्वान् मूर्ति का अर्थ स्वरूप प्र-
तिमा का अर्थ तोल पूजा का अर्थ प्रशंसा वा सत्कार इत्यादि
बतला कर उनका रात दिन का सिर फ़ोड़ना एक क्षण में व्यर्थ
कर देते हैं उस पर वे महाशय दाव पेच में अज्ञात मल्लों के ऐ-
सी चिकोटों से वा दांत से काटने के सदृश स्वामीजी से उलझ
पड़ते हैं तब स्वामीजी तो स्वामीजी ही हैं वे भी कब छोड़े ब-
ना कर ही छोड़ते हैं। सारांश शास्त्रार्थ तो शास्त्रार्थ की ही री-
ति से हो सकता है परंतु इसका मूर्खों को स्वाद ही क्या आवे मेरी
दृष्टि से तो जो इस जगत् में दीखते हैं सो सब वाद विवाद क-
रा कर विरोध को बढ़ाने वाले ही दीखते हैं कोई ऐसे नहीं दीख-
ते कि सबों से ऐक्य मत्य करें और करावें यद्यपि मैंने भी स्वामी
जी पर कटाक्ष रख कर कवि बचन सुधा में बहुत सा विषय लि-
ख मारा है और उससे फ़ल यही समझ रक्खा है कि बड़े से
लड़ने में बुद्धि बढ़ती है अथवा जो स्वामीजी को बड़े २

उद्योग करने में इष्ट फल हैं वे भी सब फल मेरे लिये सही अब प्रार्थना करता हूं कि स्वामीजी अपनी क्षमा शीलता के अनुरूप मेरे लेख को बिचार मुझको बुला कर दर्शन देवें

पाठकगण मैं संस्कृत विद्या और संस्कृत भाषण और समग्र वेदावलोकन और वक्तृता और निस्पृहता आदि में स्वामीजी के समान नहीं हूं अर्थात् स्वामीजी मुझ से सर्वथा बड़े हैं अतएव मुझे माननीय हैं " किमतः परं तेषां स्वागत मेव कार्यं" यही सिद्धान्त है। " तुष्यन्तु सुजना बुध्वा विशेषान् मदुदीरितान्॥ अबोधेन हसन्तो मां तोषमेष्यति दुर्जनाः॥१॥ वाचक लोगों से भी प्रार्थना है कि इस लेख में जितना कुछ लिखा है जहां तक मेरे समझ की दौड़ है सत्यही है यह लेख मेरे हृदय का ठीक २ चित्रसी है ऐसा समझिये परन्तु इस चित्र के देखने के लिये उसी सूक्ष्म दर्शक काच की अपेक्षा है जिस हृदय से दूसरे का हृदय जाना जाता है अलं किं बहुनोति शम्

मुकाम बांकीपुर पटना ज़िला सूबे बिहार

(२) आनंद पत्रिका

पाखण्ड तिमिर नाशक पत्र चन्द्रिका नाम की पुस्तक के देखने से मालूम हुआ कि आर्य्यावर्त में दयानन्द सरस्वती स्वामी ऐसे हैं कि जिससे अनेक देशीय लोग इस देश का और व करते हैं इति

मुन्शी दुर्गा प्रसाद स्थान दानापुर

(२) आगे तो हो गये हैं बहुत से मुनी ऋषी॥
पर अब विदित हैं स्वामी दयानन्द सरस्वती॥

हैं चारों वेद बसते जिनकी ज़बान पर। और छः हो अंग वेद के हैं जिन के ध्यान पर॥ उज्जल है ज्ञान जिनका शास्त्र औ पुरान पर। मारे हैं तर्क जिन ने बाइबल कुरान पर॥ हुए वोशास्त्री भी किये उनसे शास्त्रबाज़ी। पादरी भी जा भिड़े हैं मौलवी और क़ाज़ी॥ कर डाली खंड खंड सब धूर्तों की धूर्त बाज़ी। पाखंडि यों की खोलदी सारी जाल साज़ी॥ फ़ाज़िल हैं उनसे राज़ी अच्छे बयान पर। आकिल हैं धन्य कहते उनके ज्ञान पर॥ जाहिल हैं मरते अपने मिथ्या गुमान पर। ऐसा दिया है कृपा वेदों को जान कर॥ अब कोई कीर्ति मान न उनके समान है। अगले महात्मों का नामी निशान है। हर्षो बिषाद दोनों समान कर रक्खा है। बूझो तो यारो दिल में कैसा मज़ा चक्खा है॥ पाजी से बत्तर हैं वे अब के हरामज़ादे। जो ऐसे एकता आलिम को दुर्बचन सुनादे॥ आगे कहे या पीछे खुद कह दे या कहादे। है काम यह असल का मुझको कोई बतादे॥ धन्य धन्य धन्य स्वामी नामी अगामी सुपथ के। सुयश के होगे कर्ता हर्ता हो तुम असत् के॥ सन्मार्ग के हो राही न्याई हो सत् असत् के। दाही हो तुम अघों के ग्राही सुमत कुमत के॥

जैसे कि ब्यास गौतम भृगु वृहस्पति।
तैसे विदित हैं जग में दयानन्द सरस्वति।

(४) मुनशी इंद्रमणिजी स्थान मुरादाबाद

गई पोप लोगों की क्या बुद्धिमारी। कहें अपने इष्टों को दुष्क कर्म चारी॥ कहें अज हुए अपनी पुत्री पै मोहित। हुई सर्वथा बुद्धि जिनकी तिरोहित॥ कथा विष्णु वृंदा की जो मूर्ख गावें। कहो ऐसे पापी नरक क्यों न जावें॥ लिखी शिव कि निन्दा पुराणों में जैसी। हमें मुख से कहनी नहीं योग्य वैसी॥ कहें इन्द्र गौतम की जो कुछ कहानी। न क्यों बुद्धिमानों का हो उस से ग्लानी॥ कहें कृष्ण को चौर और जार कर्मी। रहे वेदरत जो सदा पूर्ण धर्मी॥ बृहस्पति को दोष मिथ्या लगाया। यह क्या पोपजी के हृदय में समाया॥ किया व्याह गंधर्व ऋषि वर पराशर। लगावें उन्हें दोष व्यभिचार पामर॥ हुए वेद विपरीत जो कर्म जारी। सुनो सज्जनो सत् असत् लो विचारी॥ प्रगट मूर्ति पूजन हुआ धर्म जब से। हुआ ध्यान जगदीश का नष्ट तब से॥ बढ़े हा बहुत धर्म हर्ता कुकर्मी। डरें ना नरक से टके के हैं जो मर्मी॥ जगत् में कठिन जाल ऐसा बिछाया। जो फंदे में आया निकलने न पाया॥ हुए भूत प्रेतों के विश्वास कैसे। डरें रज्जु को जान कर सर्प जैसे॥ लगे स्याने दीवानों को घर बुलाने। लगे सीस निज हर किसी को भुकाने॥ हुए आर्य हा शेख सद्दो के बान्दी। छुपा धर्म का भानु छाई कुरानी॥ लगे पूजने पीर गूगा अनारी। हुई धर्म की नष्ट मर्याद सारी॥ असत् धर्म बहु भांति बुद्धि निहारी। हुआ सज्जनों के हृदय दुःख भारी॥ लखी धर्म की जब सभी भांति हानी। किया धर्म रक्षा को उत्साह ठानी॥ सुसद्धर्म भानु यथावत् प्रकाशो। दयानन्द स्वामी सकल दुःख नाशो॥

यथा योग्य की सत् असत् की परीक्षा। हुई जिनकी पातालपर्य्यन्तदीक्षा ॥ किया काशी आदि में शास्त्रार्थ भारी। हुए शांत पाठ पोप दुष्कर्म चारी ॥ दया और आनन्द हैं मूल जिनके। करो धर्म जिज्ञासुपाद ग्रहण तिनके ॥

(५) मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी स्थान लुधियाना मुल्क पंजाब

किताब कुल्लियात अलखधारी मकाला दोयम सफ़ा ७१ में लिखते हैं कि मुझसा दहेरिया स्वामी दयानन्द की तौज़ीम करता है अंगरेज़ और मुसलमान भी- जाहिलों को क्या कहा जावे जो खान्दान का गुरु करते हैं- उनकी इज़्ज़त कुत्तों के बराबर है ॥

(६) मुक़ाम कानपुर

महाशय नमस्ते आप सुना होगा कि इधर कुछ दिनों से यहां के समाज में गड़ बड़ हो गई कारण यह हुआ कि पंडित गिरधरानन्द जी जैसे कुछ विद्वान् और वक्ता हैं सो सब आप को प्रकाशित है उनका सन्मान समाज में विशेष देख मंत्रीजी से न देखा गया और वे मन मैले काम कर उठे होते २ पंडित जी समाज छोड़ बैठे बस यह समाज भी फ़र्रुखाबाद कासा हो गया- अब कुछ दिन से श्री स्वामीजी महाराज की प्रेरणा से यहां के आर्य लोग गोरक्षणी सभा में बड़ा उत्साह कर रहे हैं १३ हज़ार के ऊपर रुपया जमा हो चुका परन्तु सब की

इच्छा यह है कि जब तक लाख रुपया एकत्र न होले इस सभाका काम छेड़ा न जावे सो इतना रुपया जमा होजाना श्रीजी महाराज की कृपा से कुछ बड़ी बात नहीं परंतु मुझे निश्चय है कि जो समाज वाले समचित्त रहें तो यह सिद्धि जल्द हो जावेगी — यदि आपको गो रक्षा के चंदे का कुछ हाल इधर उधर का जाना गया हो तो कृपा कर लिखना बहुत दिन हुए तब सुना था कि आगरे में हज़ार सात तक रुपया स्वामीजी महाराज के सामने दाखिल हो चुका था अब तो विशेष हो गया होगा — अलीगढ़ आदि नगरों में भी प्रबन्ध हो रहा था आप के समाज में भी प्रबन्ध हुआ होगा इति, आपका आज्ञा कारी गिरधारी तारीख ४ अगस्त सन् १८८२ ॥

(७) राजधानी मसूदा ज़िला अजमेर

मान्यवर नमस्ते आपने सुना होगा कि राजा साहब बहादुर सिंह जी श्रीमान् स्वामीजी महाराज के चरणों में अति प्रीति रखते हैं उनकी आज्ञानुसार बड़ा भारी होमकुण्ड बनाया है होम के लिये बड़े २ रजत पात्र श्रीजी ने अपने सामने बनवा दिये हैं राजा साहब दोनों काल प्रति दिन सेवा में उपस्थित रहते हैं और भी बहुत से उपकारक उपदेशों पर चलते हैं जैसे आपस में मेल खूब बढ़ाना मुहृत के बैर छोड़ देना कसरत करना शास्त्र विद्या में निपुण होना पाठशाला बिठलाना वृक्ष लगाना धरती को उपजाऊ करना बागात को निर्मल रखना प्रजा को पुत्रवत् पालना सत्य विद्या में श्रद्धा करना पक्षपात से बैर -

न्याय से प्रीति करना अनाथों और सन्मार्ग पर चलने वालों की यथेच्छ सहायता करना आदि आदि — क्या कहूं राजा साहब तो गुणागर हैं ही हैं परन्तु उनके मंत्री हुवे छगनलालजी भी बहुत ही प्रशंसा योग्य पुरुष हैं ईश्वर इसी प्रकार की बुद्धि इस देश के सब राज गणों और उनके मंत्री आदि काम चारियों को देवे इति॥ आपका वही सेवक ॥

जब श्रीजी महाराज यहां से चलने को हुए तब राजा साहब ने ५००) वेद भाष्य की सहायता के अर्थ भेंट किये और खुद आप को तथा अपने अधिकारियों को वेद भाष्य का ग्राहक बनाया सैकड़ों जिल्दें पंच महा यज्ञ आदि की भी राजधानी वालों ने खरीदीं॥ १५ जैनी लोगों ने अपना जैन मत छोड़ वैदिक मत अति आनन्द पूर्वक श्रीमान् के सन्मुख स्वीकार किया ऐसी खबर बहुत से भारत मित्र आदि समाचार पत्रों के सम्पादकों ने लिख श्रीमान को बहुविध धन्यवाद दिया है - कहने को यह राज्य बहुत छोटा है परंतु काम राजा साहब के देखिये आर्य गण कितने खुश भए हैं ईश्वर परमायु करे इसी प्रकार जब श्रीमान् स्वामी जी महाराज राजधानी मसूदा से चलकर कुछ दिन पीछे स्थान चीतोड़ राज्य उदयपुर आकर बिराजमान हुए तब श्री मन्महाराजा धिराज महीमहेन्द्र यावदार्य कुल दिवाकर श्री मदेकलिंगावतार विविध विरदावलि वंदित श्री १०८ श्री महाराणा सज्जन सिंह जी उदयपुर देश मेवाड़ के अधीश ने अपनी कीर्ति के अनुसार श्रीमान् का बड़ा ही आदर और सत्कार किया अनेक दिन से उस श्रीमान की सेवा में उपस्थित होकर

~~उनके स्वास्थ्य को अति विनय से पूछने और उपदेशों को सुनने से यद्यपि इन दिनों श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर को नये लाट साहब बहादुर की उपस्थिति होने के कारण बहुत कम अवकाश था तथापि ऐसी दिन इनके नियम में अंतर नहीं~~ हुआ अंत में पंच पात्र मुद्रा भेट कीं और नीचे लिखे पुरुषों सहित वेद भाष्य के आरम्भों से ग्राहक गण शिरोमणि हुए इति॥

पुरोहित पद्मनाथजी, राजा रणा श्री ५ फ़तेसिंहजी, बाबू भवानीसिंहजी नेटिवडा०, श्रीयुत् अर्जुन सिंहजी आसीन, पण्डित मोहनलालजी पंड्या, पंडित बृजनाथजी गोतम

(८) मुकाम लंदन नगर

आर्यगण। अख़बार अथींम में जोकि लंदन नगर में छपता है देखिये श्रीमान् पूर्ण प्रतापी स्वामीजी महाराज की कितनी प्रशंसा लिखी है॥ उसका आशय यहां सब लोगों पर प्रकाशित होने के लिये लिखा जाता है॥ विदित होकि प्रथम उस अख़बार में बहुत कुछ तारीफ़ संस्कृत विद्या की लिखी फिर लिखा कि इस अखबार के देखने वालों को याद होगा कि एक बर्ष की अवधि हुई होगी तब इस लंदन नगर में श्यामजी कृष्ण वर्मा के पधारने की ख़बर छापी गई थी वे संस्कृत में बड़ी भारी योग्यता रखते हैं उनकी विद्या अथाह दर्जे पर है इस लिये लंदन के विद्वानों ने उनको उचित जान पण्डित नामकी पदवी समर्पित

की है — इस तरुण पुरुष ने एक ऐसे परमसुप्रसिद्ध और पूर्ण विद्वान् से विद्या प्राप्त की है जो केवल प्राचीन संस्कृत विद्या ही नहीं जानते किन्तु उन्होंने सारे आर्य्यावर्त के मतवादियों में हिलचल डाल दी है और इस प्रकार मूर्ति पूजनादिक विषयों का खंडन करते हैं कि उनके सन्मुख कोई वहां का विद्वान् और पुजारी आदि ठहर नहीं सकता वे परमेश्वर को अद्वितीय निर्विकार और निराकार जानते हैं उनका मत ठीक वेदानुकूल है इस आर्य्यावर्त को सुधार और उन्नति करने वाले सत् पुरुष का नाम स्वामी दयानन्द सरस्वती है इनके वक्तृत्व का माधुर्य और लेख के गांभीर्य का मैं खुद पूरा २ साक्षी हूं क्योंकि जब मैं बंबई में था उस समय मैंने प्रशंसित स्वामीजी को आर्य्य समाज के आमजल्सों में धर्म विषयक व्याख्यान देते देखा और सुना है और उनका एक संस्कृत का पत्र (जो उन्होंने अपने विद्यार्थी श्यामजी कृष्णवर्मा को कि जो इन दिनों अक्सफोर्ड कालिज के मेम्बर हैं लिखा था) मैंने देखा है और अब मैं उस पत्र का तर्जुमा अर्थात् अनुवाद उक्त पंडितजी की आज्ञा लेकर छापता हूं वास्तव में यह पत्र श्लोक बद्ध था ॥

उक्त पत्र का अनुवाद

नमस्ते — विदित होकि यद्यपि तुम बावजूद साबित क़दमी तरीक़ह वेद और अपनी विद्या के स्तुति योग्य हो परन्तु परम पश्चात्ताप की बात है कि तुमने अपने पत्र द्वारा बहुकाल से मुझ को आनंदित नहीं किया अब मैं आशा करता हूं कि तुम अपने कुशल और नीचे लिखे विषयों के जवाब से मुझ को बहुशीघ्र

प्रमुदित करोगे — इङ्गलिस्तान के रहने वाले लोग किस प्रकार के हैं + और उनकी प्रकृति और ढंग व चलन कैसे हैं - वहां की पृथ्वी और वायु जल कैसा है और सामान खाने पीने आदि आराम का वहां किस प्रकार मिलता है - जब से तुम यहां से गये हो तब से तुम्हारी शारीरिक आरोग्यता की क्या दशा है और इङ्गलिस्तान में तुम्हारी खास इच्छा पूरी भी होती है वा क्या - वहां के लोग किस प्रकार प्रेम रखते हैं और क्या २ पुस्तकें तुमसे पढ़ते हैं - तुम्हारी मासिक प्राप्ति और व्यय क्या है और तुम्हारे अधीन ग्रंथों के पूर्वापर अवलोकन करने व विचारने और दूसरों के पढ़ाने का समय क्या २ नियत है — इसका क्या कारण है कि धर्मोपदेश करने में आर्यावर्त के अनुरूप अभी तक तुम्हारी प्रसिद्धि इङ्गलिस्तान में नहीं फैली — कदाचित् मेरी दूरस्थिति होने के कारण मुझ को तुम्हारी प्रसिद्धि के समाचार न मिलते हों अथवा इस काम के करने का तुम को अवकाश न मिलता हो - यदि इस का कारण द्वितीय है तो अब मेरी प्रबल इच्छा यह है कि जिस वक्त तुम पढ़ाने से निश्चिन्त हुआ करो उस समय वा० ध० म० त की उन्नति में जिस प्रकार हो वहां खूब यत्न करो पश्चात् यहां चले आओ क्योंकि ऐसे सर्वोत्तम और सर्वोपकारी काम में अपनी प्रसिद्धि करना रुपया पैदा करने से विशेषतर उत्तम है - हमारे मित्र प्रोफ़ेसर मोनियर विलियम और माक्स मूलर साहबों की वेद और शास्त्रों के विषय में तथा वहां के और २ विद्वानों की मेरे वेद भाष्य पर कैसी क्या संमति

अर्थात् राय है – क्या यह सत्य है कि थ्यूसूफ़िकिल सुसैटी ने कोई वेद मत की शाखा लंदन में स्थापित करदी है – कभी तुमने भरत खण्ड की राज राजेश्वरी से भी सन्मान परिचय प्राप्त किया है और कभी पार्लीमेंट में भी गये हो – परन्तु प्रीति पूर्वक इन सब प्रश्नों का उत्तर अति शीघ्र भेजदो – और वे भी बातें लिखो जिनको तुम अपने निकट लिखनेके योग्य समझो – प्रस्तुत मेरा इतना ही लेख बहुत है क्योंकि बुद्धिवानों को संकेत मात्र अपेक्षित होता है न विस्तार इति – तिथि ज्येष्ट शुक्ला ७ मंगलवार सम्वत् १९३७ विक्रमी

इसके पीछे अखबार वाले ने अपनी यह राय लिखी है कि यह ऊपर की चिट्ठी निहायत साफ़ पाक संस्कृत में लिखी हुई थी – यों तो बहुत से आर्य्यावर्त के विद्वानों से मुझे काम पड़ता है और कश्मीर व त्रावणकोर वगैरः के बड़े २ नामी पंडितों से मेरी लिखा पढ़ी जारी है परन्तु यह चिट्ठी सर्वोपरि एक निमूना है और इसलिये छापी गई है कि यूरोपनिवासियों को आर्यों की योग्यता और कृति तथा राजभक्ति प्रकाशित हो जाय ॥

इति प्रमाणाष्टकम्

कहिये आर्य्य गण कैसा प्रज्वलित निर्मल और निर्विवाद यह प्रमाणाष्टक है जिनको परमात्मा ने थोड़ी सी बुद्धि अर्पण की होगी वे इस ग्रन्थ को देख सदैव को निर्विकार हो जावेंगे रहे बुद्धि हीन सो उनके लिये तो पुराने मनुष्य प्रथमही निर्धार कर गए हैं जैसे ९ मन्येदुर्जन चित्तवश्य करणे धातापि

भग्नोद्यमः॥ अर्थात मूरख हृदै न चेत जो गुरु मिलें विरंचि सम॥ जब ऐसों के सुधार के लिये ब्रह्मा सरीखे हार मान बैठे तो आगे और कौन उनसे अधिक सामर्थ्य लेकर इनके लिये आवेगा बुद्धिमानों को उचित है कि ऐसों को उनकी प्रारब्ध के हवाले करके आपको जो कर्त्तव्य है वह करें और कदापि अपना अमौल्य समय वृथा न गमावें जहां तक हो सके वहां तक विद्योपार्जन करके अपना और अपने देश का भला करें देखो यही काम श्रीमान् स्वामीजी महाराज ने किया है स्वामीजी क्या जितने ऋषि मुनि और राम कृष्णादिक प्रशंसनीय सत्पुरुष हुए हैं वे सब इसी एक मार्ग के ग्रहण से हुए हैं और जो होंगे वे भी इसी मार्ग से होंगे इसी को शुद्ध सनातन वैदिक मार्ग कहते हैं। कभी कोई भूल कर भी आज से पीछे ऐसे वैसे लोगों की बातों का विश्वास न करें और याद रक्खें कि इन सब लोगों ने जितना धर्म के नाम का जाल फैलाया है वह सब तुम्हारे ही फांसने को फैलाया है इनके उस जाल के काटने और तुम्हें उससे मुक्त करने को श्रीमान् उद्यत हुए हैं यह देख के लोग जले दुखित हैं तभी ये खिसयाने होकर शुद्ध मार्गी बन्धु स्त्रियों को कलंकित करते हैं। जो अजमाना चाहें तो इनको इसी एक बात से अजमालो जैसे ऊपर निर्णय हो चुका है कि इनका और स्वामीजी के कथन का अंतर केवल यह है कि स्वामीजी मूर्ति पूजा जिसकी कि जड़ पुराण है वेदविरुद्ध और ये लोग उसको वेद विहित बताते हैं सो यह अंतर

वास्तव्य में ऐसा नहीं कि जिस पर इतना विरोध रहे परन्तु मुसल्मानों का वैदिक मत से धरती आकाश कासा अन्तर है सो देखा जाता है कि उनकी मियाँमदार आदि अनेक नाम की क़बरें अच्छे २ वानिपेश्री और बड़े २ पंडित लोग तक जा जा कर पूजते हैं। जो पूछोगे कि ज़खई और मियाँ मदार की भी पूजा तुम्हारे वेद और पुराणों में लिखी है तो कहेंगे कि कहीं नहीं लिखी फिर क्या कारण है कि जिनका तुम्हारा कुछ भी मेल नहीं है उनकी क़बरें बड़ी ख़ुशी से पूजो और किञ्चित अंतर वालों को इतना बुरा कहो — बस साबित हो जायगा कि सरासर रिश्वसथानपन और अन्याय की बातें हैं कुछ होकर्त्ता कोई भोला होता है परन्तु आर्य्य धर्म भी कठिन है उनका वचन है “ तथापि खलु खिद्यते चेतः ” अर्थात् अपनी क्या हानि जो पराये अंगूर कोई गधा चरजाय — पर क्या कीजिये ग़ैर मुनासिब देख रहा ही नहीं जाता यदि उनसे कुछ कहने को जाओ तो उपकार के पलटे अपकार खड़ा होता है सीधी गाली सुनना पड़ती हैं वहां यह विचार कर लिया जाता है कि इनके पास यही धन है सो देते हैं दूसरे आर्य्यों की शिक्षा स्मरण हो आती है “ निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ॥ अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥१॥ अर्थात् कोई भला कहो वा बुरा हानि हो वा लाभ मरें वा जियें हम अपनी लकीर के बाहर पैर नहीं धर सकते — कहो जिनका ऐसा सर्वत्र सुयश और ऐसी उत्तमोत्तम

शिक्षा और अखंड प्रताप उनकी प्रशंसा यदि कोई मुझसा तुच्छ करना चाहो तो कहांलोकरे—इसग्रन्थकार ने बहुधा छोटे मुंह बड़ा ग्रास की कहावत कर दिखाई है तथापि उसको विद्वज्जनों की कृपादृष्टि रहने ही की आशा है क्योंकि वे लोग अच्छे प्रकार जानते हैं कि सच्चे का तात्कालिक स्वाद कड़वा ही होता है। जिस परमात्मा की कृपा से यह ग्रंथ यहां तक निर्विघ्न आ पहुंचा उसकी सेवा में अनन्त धन्यवाद करके आशा करता हूं कि वह इस भरत खंड पर अपनी पूर्ण दृष्टि से निहारे। धन्य हैं वे लोग जिन की अभिरुचि और सहायता से यह ग्रंथ आविर्भूत हुआ आगे को वे लोग भी धन्यवाद के योग्य होंगे जो इस का लालन पालन करेंगे॥ विज्ञेषु किम्बहुना निशम्

अथ विनयाष्टकम्॥

श्रीस्पर्शिना चक्षुस्त्वा गता गतीनां तमस्तमच्छन्नरुचांमतीनाम्
श्रीमद्दयानन्द सरस्वतीनां जयन्तु वाचो नितरां यतीनाम्॥१॥

अर्थात् शास्त्रों के ज्ञान में भ्रान्ति रहित तमोगुण रूप अन्धकार से आच्छादित बुद्धियों को विज्ञान देने के हेतु श्रीमान् दयानन्द सरस्वती जी महाराज के वचन अतिशय करके जय को प्राप्त हों॥१॥

परापर वेदन वाक्पतीनां सद्वेद वादान्तय शासतीनाम्। श्री
मद्दयानन्द सरस्वतीनां जयन्तु वाचो नितरां यतीनाम्॥२॥

अर्थात् परा कहें से वेदत्रयी और अपर ब्रह्म विद्या अर्थात्

उपनिषद्भाग के जानने से बहुख्याति और समीचीन वेद विषय-के वाद से प्राप्त किया है यशःसमूह जिन्होंने ऐसे श्रीमान दया-नन्द सरस्वती जी महाराज के वचन अतिशय करके जय को प्राप्त हों ॥२॥

वैशेषिका शोषित हृद्भतीना मशेष शोषाशय सा दृत्तीनाम् ॥
श्रीमद्दया नन्द सरस्वतीनां जयन्तु वाचो नितरां यतीनाम्॥३॥

अर्थात् वैशेषिक अर्थात कणाद कृता वलम्बियों के समग्र आश-य के जानने में प्रीति युक्त और सम्पूर्ण शेष अर्थात पतञ्ज-लि भाष्यकार के हार्द ज्ञान में सादर श्रीमान् दयानन्द सरस्व-ती जी महाराज के वचन अतिशय करके जय को प्राप्त हों ३

साङ्ख्यज्ञ सङ्ख्या विदुषां नतीनां भुवां भवेऽभव्यभिदांसतीनाम्
श्रीमद्दया नन्द सरस्वतीनां जयन्तुवाचो नितरां यती नाम् ॥४॥

अर्थात् सांख्य अर्थात् कपिल मुनि प्रणीत प्रकृति पुरुष विवेचक शास्त्र के ज्ञाता विद्वानों के नमस्कार की पृथ्वी रूप अर्थात् सा-धु शास्त्रियों के नमस्कार करने को योग्य और दुराचार के नाश-क श्रीमान् दयानन्द सरस्वती जी महाराज के वचन अतिशय क-र के जय को प्राप्त हों ॥४॥

पाखण्ड पाखण्ड तमो धुनीनां सुधर्म्म रक्षा विलसद्युतीनाम्
श्रीमद्दयानन्द सरस्वतीनां जयन्तु वाचो नितरां यतीनाम् ॥५॥

अर्थात पाखण्डियों के पाखण्ड रूप अन्धकार के दूर करने वाले और वेद विहित सुधर्म की रक्षा करके शोभाय मान है दीप्ति जि-नकी ऐसे श्रीमान् दयानन्द सरस्वती जी महाराज के वचन अति-शय करके जय को प्राप्त हों ॥५॥

मूर्त्यर्च्च का नाशुरु संहतीनामबोध विध्वंसन भारती नाम् ॥
श्रीमद्दयानन्द सरस्वतीनां जयन्तु वाचो नितरां यतीनाम् ॥६॥

अर्थात् मूर्ति पूजक लोगोंके बहुत समूहों के अज्ञान के नाश कर ने में सरस्वती रूप श्रीमान् दयानन्द सरस्वतीजी महाराज के वचन अतिशय करके जय को प्राप्त हों ॥६॥

यथार्थ्य मुह्यो धवतां कृतीनां श्रुति स्मृतीनां महतां स्तीनाम्
श्रीमद्दयानन्द सरस्वतीनां जयन्तु वाचो नितरां यतीनाम् ॥७॥

अर्थात् विद्वानों के बीच में महा पुरुषों के मार्ग भूत श्रुति स्मृतियों का याथार्थ्य प्रकाश करने वाले श्रीमान् दयानन्द सरस्वतीजी महाराज के वचन अतिशयकर के जयको प्राप्त हों ॥७॥

याचध्व मार्या ऽत्र प्रायश्चतीनां स्थितिं समानां विषया रतीनाम् ॥
श्रीमद्दयानन्द सरस्वतीनां जयन्तु वाचो नितरां यतीनाम् ॥८॥

अर्थात् हे आर्यो विषय से प्रीति रहित श्रीमान् दयानन्द सरस्वतीजी महाराज की बहुत वर्ष तक इस संसार में स्थिति रहने की श्रीजगदीश्वर से आप सब लोग अंत: करण से प्रार्थना करो जिससे उनके वचन सार्वकाल जयको प्राप्त हों ॥८॥

इति श्री [illegible] परिव्राजकाचार्य [illegible] श्री दिग्विजयार्कीय द्वितीयाङ्क [illegible] [illegible] समाप्तोऽयम् द्वितीयाङ्कः [illegible]
वसुरामाङ्क चन्द्रेऽब्दे नभस्यस्य सिते दले ॥
[illegible] चन्द्र वारेच ग्रन्थोऽयं पूरितां गतः ॥१॥

[illegible] भवाब्धि [illegible] [illegible] ॥
[illegible] परि [illegible] ॥२॥

विज्ञापन

स्तके छापनेका किसी अन्यपुरुषको अधिकार नहीं जोकोई किताब
रे हस्ताक्षर वा मुहर से रहित देखी जावे वह चोरी की समझ जोकोई
रे पास पकड़ भेजेगा उसको ५) रु० पारितोषक दिया जावेगा और जो
कोई इसकी वा नीचे लिखी हुई किताबों की इकट्ठी बीस से अधिक जिल्
रीदेगा उसको चालीस जिल्दों तक साढ़े बारह रुपये सैकड़ा कमीश
न दिया जावेगा और विशेष के खरीदार को भी बीस जिल्द हाई रुपया क
मीशन विशेष मिलता जावेगा हद्द कमीशन बीस रुपये सैकड़ा होगी प
नुरूप [illegible] लिखेअनुसार कमीशन नकद के खरीदार को मिलेगा न कि
ी एक दिन के भी उधार वाले को और नमूना चाहने वालों को प्रत्येक कि
ताब की क़ीमत के टिकट डाक महसूल सहित भेज देने होंगे और इसके
थक किसीका बैरंग पत्र न लिया जावेगा ॥

राजा शिवप्रसाद कृत तिमिर नाशक तृतीय खंड का खंडन क़ीमत ≡)
महसूल डाक ॥

श्रीयुत दयानन्द दिग्विजयार्क प्रथम खंड क़ीमत ॥) महसूल ॥
तथा द्वितीय खंड क़ीमत फ़ी जिल्द १) महसूल ≡)
श्रीजी महाराज की बड़ीत स्वीर [illegible] की लिखी हुई ॥) महसूल
छोटी के ।) महसूल ॥

न किताबों की दरख्वास्त [illegible] नाम ग्रन्थकार [illegible]
ना चाहिये ॥

[illegible]
[illegible] ॥ १ ॥

जानन्द दण्डी
ालय
835